अध्याय दस

उपनिवेशवाद और देहात

सरकारी अभिलेखों का अध्ययन

इस अध्याय में आप यह देखेंगे कि औपनिवेशिक शासन का अर्थ उन लोगों के लिए क्या था जो देहात में रहते थे। इस अध्याय के माध्यम से आप बंगाल के ज़मींदारों से मिलेंगे, उन राजमहल की पहाड़ियों की यात्रा करेंगे जहाँ पहाड़िया और संथाल लोग रहते थे और फिर वहाँ से दक्कन की ओर आगे बढ़ेंगे। आप यह देखेंगे कि ईस्ट इंडिया कंपनी ने देहात में अपना राज कैसे स्थापित किया था, अपनी राजस्व नीतियों को कैसे कार्यान्वित किया था, भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों के लिए इन नीतियों का क्या मतलब था और उन्होंने रोजमर्रा की ज़िंदगी को कैसे बदल दिया था।

राज्य यानी सरकार द्वारा लागू किए गए क़ानूनों के जनसाधारण के लिए अनेक परिणाम होते हैं : वे कुछ हद तक यह निर्धारित करते हैं कि उन क़ानूनों के परिणामस्वरूप कौन पहले से अधिक धनवान बनते हैं और कौन ग़रीब हो जाते हैं; किसे नयी ज़मीन मिल जाती है और कौन अपनी उस ज़मीन को खो बैठता है जिस पर वह रहता और गुज़र-बसर करता था; किसानों को जब पैसे की ज़रूरत पड़ती है तब वे कहाँ, किसके पास जाते हैं; आप यह भी देखेंगे कि लोग क़ानूनों का पालन करने के लिए मजबूर होते हुए भी ऐसे क़ानून का विरोध करने से भी नहीं हिचकते थे जिसे वे अन्यायपूर्ण समझते थे। ऐसा करते समय लोग यह भी स्पष्ट करने का प्रयत्न करते थे कि क़ानून किस प्रकार लागू किए जाने चाहिए, और इस प्रकार वे उनके परिणामों में कुछ फेर-बदल कर देते थे।

आप उन स्रोतों के बारे में भी जान पाएँगे जो हमें इन इतिहासों के बारे में बताते हैं साथ ही इन समस्याओं के बारे में भी जो इतिहासकारों के सामने इस संबंध में उपस्थित होती हैं। आप राजस्व अभिलेखों और सर्वेक्षणों, पत्र-पत्रिकाओं तथा सर्वेक्षकों एवं यात्रियों द्वारा छोड़े गए विवरणों और जाँच आयोगों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्टों के बारे में भी पढ़ेंगे।

चित्र 10.1
कपास गाँव से मंडी ले जाई जा रही है। यह चित्र 20 अप्रैल 1861 के 'लंदन न्यूज' में प्रकाशित हुआ था।

1. बंगाल और वहाँ के ज़मींदार

जैसा कि आप जानते हैं, औपनिवेशिक शासन सर्वप्रथम बंगाल में स्थापित किया गया था। यही वह प्रांत था जहाँ पर सबसे पहले ग्रामीण समाज को पुनर्व्यवस्थित करने और भूमि संबंधी अधिकारों की नयी व्यवस्था तथा एक नयी राजस्व प्रणाली स्थापित करने के प्रयत्न किए गए थे। आइए, यह देखें कि कंपनी शासन के प्रारंभिक वर्षों में बंगाल में क्या हुआ।

1.1 बर्दवान में की गई नीलामी की एक घटना

सन् 1797 में बर्दवान (आज के बर्द्धमान) में एक नीलामी की गई। यह एक बड़ी सार्वजनिक घटना थी। बर्दवान के राजा द्वारा धारित अनेक महाल (भूसंपदाएँ) बेचे जा रहे थे। सन् 1793 में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू हो गया था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजस्व की राशि निश्चित कर दी थी जो प्रत्येक ज़मींदार को अदा करनी होती थी। जो ज़मींदार अपनी निश्चित राशि नहीं चुका पाते थे उनसे राजस्व वसूल करने के लिए उनकी संपदाएँ नीलाम कर दी जाती थीं। चूँकि बर्दवान के राजा पर राजस्व की बड़ी भारी रकम बकाया थी, इसलिए उसकी संपदाएँ नीलाम की जाने वाली थीं।

'राजा' शब्द का प्रयोग अकसर शक्तिशाली ज़मींदारों के लिए किया जाता था।

नीलामी में बोली लगाने के लिए अनेक ख़रीददार आए थे और संपदाएँ (महाल) सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को बेच दी गईं। लेकिन कलेक्टर को तुरंत ही इस सारी कहानी में एक अजीब पेंच दिखाई दे गया। उसे जानने में आया कि उनमें से अनेक ख़रीददार, राजा के अपने ही नौकर या एजेंट थे और उन्होंने राजा की ओर से ही ज़मीनों को ख़रीदा था। नीलामी में 95 प्रतिशत से अधिक बिक्री फ़र्ज़ी थी। वैसे तो राजा की ज़मीनें खुलेतौर पर बेच दी गई थीं पर उनकी ज़मींदारी का नियंत्रण उसी के हाथों में रहा था।

राजा कंपनी को राजस्व क्यों नहीं अदा कर पाया था? नीलामी में ख़रीददार कौन थे? यह कहानी उस समय पूर्वी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में क्या हो रहा था, इसके बारे में हमें क्या बताती है?

चित्र 10.2
बर्दवान के राजा का डायमंड हार्बर रोड, कलकत्ता स्थित राजमहल
19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों तक बंगाल के बहुत से धनी ज़मींदारों ने अपने लिए सुंदर विशाल स्तंभों वाले राजमहल बनवा लिए थे जिनमें नृत्यकक्ष, बड़े-बड़े मैदान, शानदार प्रवेश द्वार थे।

1.2 अदा न किए गए राजस्व की समस्या

अकेले बर्दवान राज की ज़मीनें ही ऐसी संपदाएँ नहीं थीं जो अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में बेची गई थीं। इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किए जाने के बाद 75 प्रतिशत से अधिक ज़मींदारियाँ हस्तांतरित कर दी गई थीं।

ब्रिटिश अधिकारी यह आशा करते थे कि इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किए जाने से वे सभी समस्याएँ हल हो जाएँगी जो बंगाल की विजय के समय से ही उनके समक्ष उपस्थित हो रही थीं। 1770 के दशक तक आते-आते, बंगाल की ग्रामीण अर्थव्यवस्था संकट के दौर से गुजरने लगी थी क्योंकि बार-बार अकाल पड़ रहे थे और खेती की पैदावार घटती जा रही थी। अधिकारी लोग ऐसा सोचते थे कि खेती, व्यापार और राज्य के राजस्व संसाधन सब तभी विकसित किए जा सकेंगे जब कृषि में निवेश

को प्रोत्साहन दिया जाएगा और ऐसा तभी किया जा सकेगा जब संपत्ति के अधिकार प्राप्त कर लिए जाएँगे और राजस्व माँग की दरों को स्थायी रूप से तय कर दिया जाएगा। यदि राज्य (सरकार) की राजस्व माँग स्थायी रूप से निर्धारित कर दी गई तो कंपनी राजस्व की नियमित प्राप्ति की आशा कर सकेगी और उद्यमकर्ता भी अपने पूँजी-निवेश से एक निश्चित लाभ कमाने की उम्मीद रख सकेंगे, क्योंकि राज्य अपने दावे में वृद्धि करके लाभ की राशि नहीं छीन सकेगा। अधिकारियों को यह आशा थी कि इस प्रक्रिया से छोटे किसानों (योमॅन) और धनी भूस्वामियों का एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो जाएगा जिसके पास कृषि में सुधार करने के लिए पूँजी और उद्यम दोनों होंगे। उन्हें यह भी उम्मीद थी कि ब्रिटिश शासन से पालन-पोषण और प्रोत्साहन पाकर, यह वर्ग कंपनी के प्रति वफ़ादार बना रहेगा।

लेकिन समस्या यह पता लगाने की थी कि वे कौन से व्यक्ति हैं जो कृषि में सुधार करने के साथ-साथ राज्य को निर्धारित राजस्व अदा करने का ठेका ले सकेंगे। कंपनी के अधिकारियों के बीच परस्पर लंबे वाद-विवाद के बाद, बंगाल के राजाओं और ताल्लुकदारों के साथ इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया। अब उन्हें ज़मींदारों के रूप में वर्गीकृत किया गया और उन्हें सदा के लिए एक निर्धारित राजस्व माँग को अदा करना था। इस परिभाषा के अनुसार, ज़मींदार गाँव में भू-स्वामी नहीं था, बल्कि वह राज्य का राजस्व समाहर्ता यानी (संग्राहक) मात्र था।

ज़मींदारों के नीचे अनेक (कभी-कभी तो 400 तक) गाँव होते थे। कंपनी के हिसाब से, एक ज़मींदारी के भीतर आने वाले गाँव मिलाकर एक राजस्व संपदा का रूप ले लेते थे। कंपनी समस्त संपदा पर कुल माँग निर्धारित करती थी। तदोपरांत, ज़मींदार यह निर्धारित करता था कि भिन्न-भिन्न गाँवों से राजस्व की कितनी-कितनी माँग पूरी करनी होगी, और फिर ज़मींदार उन गाँवों से निर्धारित राजस्व राशि इकट्ठी करता था। ज़मींदार से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह कंपनी को नियमित रूप से राजस्व राशि अदा करेगा और यदि वह ऐसा नहीं करेगा वो उसकी संपदा नीलाम की जा सकेगी।

चित्र 10.3
चार्ल्स कार्नवालिस (1738-1805) का 1785 में थॉमस गेन्सबोरो द्वारा चित्रित चित्र।
अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कार्नवालिस ब्रिटिश सेना का कमांडर था। जब 1793 में बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया, उस समय कार्नवालिस बंगाल का गवर्नर जनरल था।

1.3 राजस्व राशि के भुगतान में ज़मींदार क्यों चूक करते थे?

कंपनी के अधिकारियों का यह सोचना था कि राजस्व माँग निर्धारित किए जाने से ज़मींदारों में सुरक्षा का भाव उत्पन्न होगा, और वे अपने निवेश पर प्रतिफल प्राप्ति की आशा से प्रेरित होकर अपनी संपदाओं में सुधार करने के लिए प्रोत्साहित होंगे। किंतु इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद, कुछ प्रारंभिक दशकों में ज़मींदार अपनी राजस्व माँग को अदा करने में बराबर कोताही करते रहे, जिसके परिणामस्वरूप राजस्व की बकाया रकमें बढ़ती गईं।

'ताल्लुक़दार' का शब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसके साथ ताल्लुक़ यानी संबंध हो। आगे चलकर ताल्लुक़ का अर्थ क्षेत्रीय इकाई हो गया।

ज़मींदारों की इस असफलता के कई कारण थे। पहला : प्रारंभिक माँगें बहुत ऊँची थीं, क्योंकि ऐसा महसूस किया गया था कि यदि माँग को आने वाले संपूर्ण समय के लिए निर्धारित किया जा रहा है तो आगे चलकर कीमतों में बढ़ोतरी होने और खेती का विस्तार होने से आय में वृद्धि हो जाने पर भी कंपनी उस वृद्धि में अपने हिस्से का दावा कभी नहीं कर सकेगी। इस प्रत्याशित हानि को कम-से-कम स्तर पर रखने के लिए, कंपनी ने राजस्व माँग को ऊँचे स्तर पर रखा, और इसके लिए दलील दी कि ज्यों-ज्यों कृषि के उत्पादन में वृद्धि होती जाएगी और कीमतें बढ़ती जाएँगी, ज़मींदारों का बोझ शनैः शनैः कम होता जाएगा।

दूसरा : यह ऊँची माँग 1790 के दशक में लागू की गई थी जब कृषि की उपज की कीमतें नीची थीं, जिससे रैयत (किसानों) के लिए, ज़मींदार को उनकी देय राशियाँ चुकाना मुश्किल था। जब ज़मींदार स्वयं किसानों से राजस्व इकट्ठा नहीं कर सकता था तो वह आगे कंपनी को अपनी निर्धारित राजस्व राशि कैसे अदा कर सकता था? तीसरा : राजस्व असमान था, फ़सल अच्छी हो या ख़राब राजस्व का ठीक समय पर भुगतान ज़रूरी था। वस्तुतः सूर्यास्त विधि (कानून) के अनुसार, यदि निश्चित तारीख़ को सूर्य अस्त होने तक भुगतान नहीं आता था तो ज़मींदारी को नीलाम किया जा सकता था। चौथा : इस्तमरारी बंदोबस्त ने प्रारंभ में ज़मींदार की शक्ति को रैयत से राजस्व इकट्ठा करने और अपनी ज़मींदारी का प्रबंध करने तक ही सीमित कर दिया था।

'रैयत' शब्द का प्रयोग अंग्रेज़ों के विवरणों में किसानों के लिए किया जाता था (अध्याय-8)। बंगाल में रैयत ज़मीन को खुद काश्त नहीं करते थे, बल्कि 'शिकमी-रैयत' को आगे पट्टे पर दे दिया करते थे।

कंपनी ज़मींदारों को पूरा महत्त्व तो देती थी पर वह उन्हें नियंत्रित तथा विनियमित करना, उनकी सत्ता को अपने वश में रखना और उनकी स्वायत्तता को सीमित करना भी चाहती थी। फलस्वरूप ज़मींदारों की सैन्य-टुकड़ियों को भंग कर दिया गया, सीमा शुल्क समाप्त कर दिया गया और उनकी कचहरियों को कंपनी द्वारा नियुक्त कलेक्टर की देखरेख में रख दिया गया। ज़मींदारों से स्थानीय न्याय और स्थानीय पुलिस की व्यवस्था करने की शक्ति छीन ली गई। समय के साथ-साथ, कलेक्टर का कार्यालय सत्ता के एक विकल्पी केंद्र के रूप में उभर आया और ज़मींदार के अधिकार को पूरी तरह सीमित एवं प्रतिबंधित कर दिया गया। एक मामले में तो यहाँ तक हुआ कि जब राजा राजस्व का भुगतान नहीं कर सका तो एक कंपनी अधिकारी को तुरंत इस स्पष्ट अनुदेश के साथ उसकी ज़मींदारी में भेज दिया गया कि "ज़िले का पूरा कार्यभार अपने हाथ में ले लो और राजा तथा उसके अधिकारियों के संपूर्ण प्रभाव और प्राधिकार को ख़त्म कर देने के लिए सर्वाधिक प्रभावशाली क़दम उठाओ।"

राजस्व इकट्ठा करने के समय, ज़मींदार का एक अधिकारी जिसे आमतौर *पर अमला* कहते थे, गाँव में आता था। लेकिन राजस्व संग्रहण एक परिवार्षिक समस्या थी। कभी-कभी तो खराब फ़सल और नीची

कीमतों के कारण किसानों के लिए अपनी देय राशियों का भुगतान करना बहुत कठिन हो जाता था और कभी-कभी ऐसा भी होता था कि रैयत जान बूझकर भुगतान में देरी कर देते थे। धनवान रैयत और गाँव के मुखिया – *जोतदार और मंडल* – ज़मींदार को परेशानी में देखकर बहुत ख़ुश होते थे। क्योंकि ज़मींदार आसानी से उन पर अपनी ताकत का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। ज़मींदार बाक़ीदारों पर मुक़दमा तो चला सकता था, मगर न्यायिक प्रक्रिया लंबी होती थी। 1798 में अकेले बर्दवान ज़िले में ही राजस्व भुगतान के बक़ाया से संबंधित 30,000 से अधिक वाद लंबित थे।

1.4 जोतदारों का उदय

अठारहवीं शताब्दी के अंत में जहाँ एक ओर अनेक ज़मींदार संकट की स्थिति से गुजर रहे थे, वहीं दूसरी ओर धनी किसानों के कुछ समूह गाँवों में अपनी स्थिति मज़बूत करते जा रहे थे। फ्रांसिस बुकानन के उत्तरी बंगाल के दिनाजपुर जिले के सर्वेक्षण में हमें धनी किसानों के इस वर्ग का, जिन्हें 'जोतदार' कहा जाता था, विशद विवरण देखने को मिलता है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों तक आते-आते, जोतदारों ने ज़मीन के बड़े-बड़े रकबे, जो कभी-कभी तो कई हज़ार एकड़ में फैले थे, अर्जित कर लिए थे। स्थानीय व्यापार और साहूकार के कारोबार पर भी उनका नियंत्रण था और इस प्रकार वे उस क्षेत्र के ग़रीब काश्तकारों पर व्यापक शक्ति का प्रयोग करते थे। उनकी ज़मीन का काफ़ी बड़ा भाग बटाईदारों (अधियारों या बरगादारों) के माध्यम से जोता जाता था, जो ख़ुद अपने हल लाते थे, खेत में मेहनत करते थे और फ़सल के बाद उपज का आधा हिस्सा जोतदारों को दे देते थे।

गाँवों में, जोतोदारों की शक्ति, ज़मींदारों की ताक़त की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होती थी। ज़मींदार के विपरीत जो शहरी इलाक़ों में रहते थे, जोतदार गाँवों में ही रहते थे और ग़रीब ग्रामवासियों के काफ़ी बड़े वर्ग पर सीधे अपने नियंत्रण का प्रयोग करते थे। ज़मींदारों द्वारा गाँव की *जमा* (लगान) को बढ़ाने के लिए किए जाने वाले प्रयत्नों का वे घोर प्रतिरोध करते थे; ज़मींदारी अधिकारियों को अपने कर्तव्यों का पालन करने से रोकते थे; जो रैयत उन पर निर्भर रहते थे उन्हें वे अपने पक्ष में एकजुट रखते थे और ज़मींदार को राजस्व के भुगतान में जान-बूझकर देरी करा देते थे। सच तो यह है कि जब राजस्व का भुगतान न किए जाने पर ज़मींदार की

चित्र 10.4
बंगाल के गाँव का दृश्य; जॉर्ज चिनरी द्वारा 1820 में चित्रित।

चिनरी भारत में 23 वर्ष (1802-25) तक रहा था। उस दौरान उसने अनेक चित्र बनाए थे जिनमें आम लोगों के जनजीवन से संबंधित चित्र, भूदृश्यों के चित्र, विशिष्ट व्यक्तियों तथा विशाल भवनों के चित्र शामिल थे। नीचे दी गई आकृति में ग्रामीण बंगाल के एक घर का चित्र दिया गया है; उन दिनों जोतदार और साहूकार लोग ऐसे ही घरों में रहा करते थे।

स्रोत 1

दिनाजपुर के जोतदार

बुकानन ने बताया है कि उत्तरी बंगाल के दिनाजपुर ज़िले के जोतदार किस प्रकार ज़मींदार के अनुशासन का प्रतिरोध और उसकी शक्ति की अवहेलना किया करते थे :

> भूस्वामी इस वर्ग के लोगों को पसंद नहीं करते थे, लेकिन यह स्पष्ट है कि इन लोगों का होना बहुत ज़रूरी था क्योंकि इनके बिना, ज़रूरतमंद काश्तकारों को पैसा उधार कौन देता...
>
> *जोतदार*, जो बड़ी-बड़ी ज़मीनें जोतते हैं, बहुत ही हठीले और जिद्दी हैं और यह जानते हैं कि ज़मींदारों का उन पर कोई वश नहीं चलता। वे तो अपने राजस्व के रूप में कुछ थोड़े से रुपये ही दे देते हैं और लगभग हर किस्त में कुछ-न-कुछ बक़ाया रक़म रह जाती है। उनके पास उनके पट्टे की हकदारी से ज़्यादा ज़मीनें हैं। ज़मींदार की रक़म के कारण, अगर अधिकारी उन्हें कचहरी में बुलाते थे और उन्हें डराने-धमकाने के लिए घंटे-दो-घंटे कचहरी में रोक लेते हैं तो वे तुरंत उनकी शिकायत करने के लिए फ़ौजदारी थाना (पुलिस थाना) या मुन्सिफ़ की कचहरी में पहुँच जाते हैं और कहते हैं कि ज़मींदार के कारिंदों ने उनका अपमान किया है। इस प्रकार राजस्व की बक़ाया रक़मों के मामलें बढ़ते जाते हैं और जोतदार छोटे-छोटे रैयत को राजस्व न देने के लिए भड़काते रहते हैं...

➲ यह बताइए कि *जोतदार* ज़मींदारों की सत्ता का किस प्रकार प्रतिरोध किया करते थे।

ज़मींदारी को नीलाम किया जाता था तो अकसर जोतदार ही उन ज़मीनों को ख़रीद लेते थे।

उत्तरी बंगाल में जोतदार सबसे अधिक शक्तिशाली थे, हालांकि धनी किसान और गाँव के मुखिया लोग भी बंगाल के अन्य भागों के देहाती इलाक़ों में प्रभावशाली बनकर उभर रहे थे। कुछ जगहों पर उन्हें '*हवलदार*' कहा जाता था और कुछ अन्य स्थानों पर वे *गाँटीदार* (Gantidars) या '*मंडल*' कहलाते थे। उनके उदय से ज़मींदारों के अधिकार का कमज़ोर पड़ना अवश्यंभावी था।

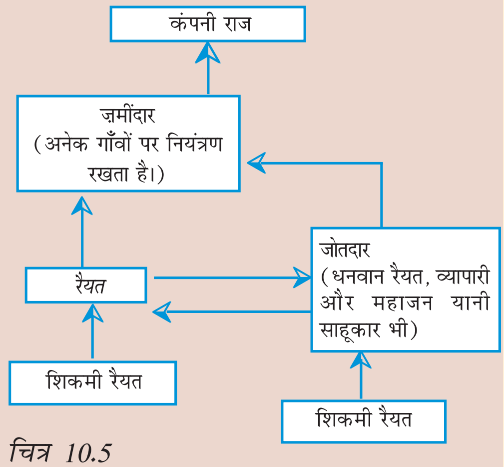

चित्र 10.5
ग्रामीण बंगाल में शक्ति के धारक

- ज़मींदार (क) कंपनी को राजस्व अदा करने के लिए, (ख) गाँवों पर राजस्व संबंधी माँग (जमा) निर्धारित करने के लिए जिम्मेदार थे।
- गाँव का प्रत्येक छोटा या बड़ा रैयत, ज़मींदार को लगान अदा करता था।
- *जोतदार अन्य रैयतों को उधार देते थे और अपनी उपज बेचते थे।*
- *रैयत कुछ ज़मीन खुद जोतते थे और बाकी ज़मीन शिकमी रैयत को लगान पर दे देते थे।*
- शिकमी रैयत, रैयतों को लगान देते थे।

➲ चित्र 10.5 के साथ दिए गए पाठ को सावधानीपूर्वक पढ़िए और तीर के निशानों के साथ-साथ उपयुक्त स्थलों पर ये शब्द भरिए : लगान, राजस्व, ब्याज, उधार (ऋण), उपज।

1.5 ज़मींदारों की ओर से प्रतिरोध

किंतु, ग्रामीण क्षेत्रों में ज़मींदारों की सत्ता समाप्त नहीं हुई। राजस्व की अत्यधिक माँग और अपनी भू-संपदा की संभावित नीलामी की समस्या से निपटने के लिए ज़मींदारों ने इन दबावों से उबरने के रास्ते निकाल लिए। नए संदर्भों में नयी रणनीतियाँ बना ली गईं।

फ़र्ज़ी बिक्री एक ऐसी ही तरक़ीब थी। इसमें कई तरह के हथकंडे अपनाए जाते थे। बर्दवान के राजा ने पहले तो अपनी ज़मींदारी का कुछ हिस्सा अपनी माता को दे दिया क्योंकि कंपनी ने यह निर्णय ले रखा था कि स्त्रियों की संपति को नहीं छीना जाएगा। फिर दूसरे क़दम के तौर पर उसके एजेंटों ने नीलामी की प्रक्रिया में जोड़-तोड़ किया। कंपनी की राजस्व माँग को जान-बूझकर रोक लिया गया और भुगतान न की गई बक़ाया राशि बढ़ती गई। जब भू-संपदा का कुछ हिस्सा नीलाम किया गया तो ज़मींदार के आदमियों ने ही अन्य ख़रीददारों के मुक़ाबले ऊँची-ऊँची बोलियाँ लगाकर संपत्ति को ख़रीद लिया। आगे चलकर उन्होंने ख़रीद की राशि को अदा करने से इनकार कर दिया, इसलिए

उस भूसंपदा को फिर से बेचना पड़ा। एक बार फिर ज़मींदार के एजेंटों ने ही उसे ख़रीद लिया और फिर एक बार ख़रीद की रक़म नहीं अदा की गई और इसलिए एक बार फिर नीलामी करनी पड़ी। यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती रही और अंततोगत्वा राज और नीलामी के समय बोली लगाने वाले थक गए। जब किसी ने भी बोली नहीं लगाई तो उस संपदा को नीची क़ीमत पर फिर ज़मींदार को ही बेचना पड़ा। ज़मींदार कभी भी राजस्व की पूरी माँग नहीं अदा करता था; इस प्रकार कंपनी कभी-कभार ही किसी मामले में इकट्ठी हुई बकाया राजस्व की राशियों को वसूल कर पाती थी।

ऐसे सौदे बड़े पैमाने पर हुए। सन् 1793 से 1801 के बीच, बंगाल की चार बड़ी ज़मींदारियों ने, जिनमें बर्दवान की ज़मींदारी भी एक थी, अनेक *बेनामी* ख़रीददारियाँ कीं जिनसे कुल मिलाकर 30 लाख रुपये की प्राप्ति हुई। नीलामियों में की गई कुल बिक्रियों में से 15 प्रतिशत सौदे नक़ली थे।

ज़मींदार लोग और भी कई तरीकों से अपनी ज़मींदारी को छिनने से बचा लेते थे। जब कोई बाहरी व्यक्ति नीलामी में कोई ज़मीन ख़रीद लेते थे तभी उन्हें हर मामले में उसका क़ब्ज़ा नहीं मिलता था। कभी-कभी तो पुराने ज़मींदार के 'लठियाल' नए ख़रीददार के लोगों को मारपीटकर भगा देते थे और कभी-कभी तो ऐसा भी होता था कि पुराने रैयत बाहरी लोगों को यानी नए ख़रीददार के लोगों को ज़मीन में घुसने ही नहीं देते थे। वे अपने आपको पुराने ज़मींदार से जुड़ा हुआ महसूस करते थे और उसी के प्रति वफ़ादार बने रहते थे और यह मानते थे कि पुराना ज़मींदार ही उनका अन्नदाता है और वे उसकी प्रजा हैं। ज़मींदारी की बिक्री से उनके तादात्म्य और गौरव को धक्का पहुँचता था। इसलिए ज़मींदार आसानी से विस्थापित नहीं किए जा सकते थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में कीमतों में मंदी की स्थिति समाप्त हो गई। इसलिए, जो ज़मींदार 1790 के दशक की तकलीफ़ों को झेलने में सफल हो गए, उन्होंने अपनी सत्ता को सुदृढ़ बना लिया। राजस्व के भुगतान संबंधी नियमों को भी कुछ लचीला बना दिया गया। फलस्वरूप गाँवों पर ज़मींदार की सत्ता और अधिक मज़बूत हो गई लेकिन आगे चलकर 1930 के दशक की घोर मंदी की हालत में अंततः ज़मींदारों का भट्ठा बैठ गया और *जोतदारों* ने देहात में अपने पाँव मज़बूत कर लिए।

चित्र 10.6
महाराजा मेहताब चंद (1820-79)।
जब इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया था, तब तेजचंद, बर्दवान का राजा था। उसके बाद, मेहताबचंद के शासन में बर्दवान की ज़मींदारी काफ़ी फली-फूली। मेहताबचंद ने संथालों के विद्रोह और 1857 के विद्रोह के दौरान अंग्रेजी हुकूमत का साथ दिया था।

1.6 पाँचवीं रिपोर्ट

हम जिन परिवर्तनों पर चर्चा कर रहे हैं उनमें से बहुत से परिवर्तनों का विस्तृत विवरण एक रिपोर्ट में दिया गया है जो सन् 1813 में ब्रिटिश संसद में पेश की गई थी। यह उन रिपोर्टों में से पाँचवीं रिपोर्ट थी जो भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन तथा क्रियाकलापों के विषय में तैयार की गई थी। अक्सर 'पाँचवीं रिपोर्ट' के नाम से उल्लिखित यह रिपोर्ट 1,002 पृष्ठों में थी। इसके 800 से अधिक पृष्ठ परिशिष्टों के थे जिनमें ज़मींदारों और रैयतों की अर्जियाँ, भिन्न-भिन्न जिलों के

कलेक्टरों की रिपोर्टें, राजस्व विवरणियों से संबंधित सांख्यिकीय तालिकाएँ और अधिकारियों द्वारा बंगाल और मद्रास के राजस्व तथा न्यायिक प्रशासन पर लिखित टिप्पणियाँ शामिल की गई थीं।

कंपनी ने 1760 के दशक के मध्य में जब से बंगाल में अपने आपको स्थापित किया था तभी से इंग्लैण्ड में उसके क्रियाकलापों पर बारीकी से नज़र रखी जाने लगी थी और उन पर चर्चा की जाती थी। ब्रिटेन में बहुत से ऐसे समूह भी थे जो भारत तथा चीन के साथ व्यापार पर ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार का विरोध करते थे। वे चाहते थे कि उस शाही फरमान को रद्द कर दिया जाए जिसके तहत इस कंपनी को यह एकाधिकार दिया गया था। ऐसे निजी व्यापारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी जो भारत के साथ होने वाले व्यापार में हिस्सा लेना चाहते थे और ब्रिटेन के उद्योगपति ब्रिटिश विनिर्माताओं के लिए भारत का बाज़ार खुलवाने के लिए उत्सुक थे। कई राजनीतिक समूहों का तो यह कहना था कि बंगाल पर मिली विजय का लाभ केवल ईस्ट इंडिया कंपनी को ही मिल रहा है, संपूर्ण ब्रिटिश राष्ट्र को नहीं। कंपनी के कुशासन और अव्यवस्थित प्रशासन के विषय में प्राप्त सूचना पर ब्रिटेन में गरमागरम बहस छिड़ गई और कंपनी के अधिकारियों के लोभ-लालच और भ्रष्टाचार की घटनाओं को ब्रिटेन के समाचारपत्रों में व्यापक रूप से उछाला गया। ब्रिटिश संसद ने भारत में कंपनी के शासन को विनियमित और नियंत्रित करने के लिए अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में अनेक अधिनियम पारित किए। कंपनी को बाध्य किया गया कि वह भारत के प्रशासन के विषय में नियमित रूप से अपनी रिपोर्ट भेजा करे और कंपनी के कामकाज की जाँच करने के लिए कई समितियाँ नियुक्त

बेनामी का शाब्दिक अर्थ '*गुमनाम*' है, हिंदी तथा कुछ अन्य भारतीय भाषाओं में इस शब्द का प्रयोग ऐसे सौदों के लिए किया जाता है जो किसी फ़र्जी या अपेक्षाकृत महत्त्वहीन व्यक्ति के नाम से किए जाते हैं और उनमें असली फ़ायदा पाने वाले व्यक्ति का नाम नहीं दिया जाता।

लठियाल, का शाब्दिक अर्थ है वह व्यक्ति जिसके पास लाठी या डंडा हो। ये ज़मींदार के लठैत यानी डंडेबाज पक्षधर होते थे।

चित्र 10.7
अंडुल राजमहल
ऐसे राजमहल एक युगांत को दर्शाने वाले अवशेष हैं। ज़मींदारों के रहन-सहन की पत्तनोन्मुख वैभवशाली जीवन शैली पर बनी सत्यजीत राय की प्रसिद्ध फिल्म '*जलशाघर*' की शूटिंग इसी अंडुल राजमहल में की गई थी।

की गईं। 'पाँचवीं रिपोर्ट' एक ऐसी ही रिपोर्ट है जो एक प्रवर समिति द्वारा तैयार की गई थी। यह रिपोर्ट भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन के स्वरूप पर ब्रिटिश संसद में गंभीर वाद-विवाद का आधार बनी।

अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में ग्रामीण बंगाल में क्या हुआ इसके बारे में हमारी अवधारणा लगभग डेढ़ शताब्दी तक इस पाँचवीं रिपोर्ट के आधार पर ही बनती-सुधरती रही। पाँचवीं रिपोर्ट में उपलब्ध साक्ष्य बहुमूल्य हैं। लेकिन ऐसी की सरकारी रिपोर्टों को सावधानीपूर्वक पढ़ना और समझना चाहिए। हमें यह जानने की ज़रूरत है कि ये रिपोर्ट किसने और किस उद्देश्य से लिखी। वास्तव में आधुनिक शोधों से पता चलता है कि पाँचवीं रिपोर्ट में दिए गए तर्कों और साक्ष्यों को बिना किसी आलोचना के स्वीकार नहीं किया जा सकता।

शोधकर्ताओं ने ग्रामीण बंगाल में औपनिवेशिक शासन के बारे में लिखने के लिए बंगाल के अनेक ज़मींदारों के अभिलेखागारों तथा ज़िलों के स्थानीय अभिलेखों की सावधानीपूर्वक जाँच की है। उनसे पता चलता है कि पाँचवीं रिपोर्ट लिखने वाले कंपनी के कुप्रशासन की आलोचना करने पर तुले हुए थे इसलिए पाँचवीं रिपोर्ट में परंपरागत ज़मींदारी सत्ता के पतन का वर्णन अतिरंजित है और जिस पैमाने पर ज़मींदार लोग अपनी ज़मीनें खोते जा रहे थे उसके बारे में भी बढ़ा-चढ़ा कर कहा गया है। जैसा कि हमने देखा है, जब जमींदारियाँ नीलाम की जाती थीं, तब भी ज़मींदार नए-नए हथकंडे अपनाकर अपनी ज़मींदारी को बचा लेते थे और बहुत कम मामलों में विस्थापित होते थे।

स्रोत 2

पाँचवीं रिपोर्ट से उद्धृत

ज़मींदारों की हालत और ज़मीनों की नीलामी के बारे में पाँचवीं रिपोर्ट में कहा गया है :

> राजस्व समय पर नहीं वसूल किया जाता था और काफ़ी हद तक ज़मीनें समय-समय पर नीलामी पर बेचने के लिए रखी जाती थीं। स्थानीय वर्ष 1203, तदनुसार सन् 1796-97 में बिक्री के लिए विज्ञापित ज़मीन की निर्धारित राशि (जुम्मा) 28,70,061 सिक्का रु. थी और वह वास्तव में 17,90,416 रु. में बेची गई और 14,18,756 रु. की राशि जुम्मा के रूप में प्राप्त हुई। स्थानीय संवत 1204, तदनुसार सन् 1797-98 में 26,66,191 सिक्का रु. के लिए ज़मीन विज्ञापित की गई, 22,74,076 सिक्का रु० की ज़मीन बेची गई और क्रय राशि 21,47,580 सिक्का रु. थी। बाकीदारों में कुछ लोग देश के बहुत पुराने परिवारों में से थे। ये थे : नदिया, राजशाही, विशनपुर (सभी बंगाल के ज़िले) आदि के राजा...। साल दर साल उनकी जागीरों के टूटते जाने से उनकी हालत बिगड़ गई। उन्हें ग़रीबी और बरबादी का सामना करना पड़ा और कुछ मामलों में तो सार्वजनिक निर्धारण की राशि को यथावत बनाए रखने के लिए राजस्व अधिकारियों को भी काफ़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं।

➲ जिस लहज़े में साक्ष्य अभिलिखित किया गया है, उससे आप रिपोर्ट में वर्णित तथ्यों के प्रति रिपोर्ट लिखने वाले के रुख़ के बारे में क्या सोचते हैं? आंकड़ों के ज़रिये रिपोर्ट में क्या दर्शाने की कोशिश की गई है? क्या इन दो वर्षों के आंकड़ों से आपके विचार से, किसी भी समस्या के बारे में दीर्घकालीन निष्कर्ष निकालना संभव होगा?

➲ चर्चा कीजिए...

आपने ज़मींदारों के हाल के बारे में अभी जो कुछ पढ़ा है उसकी तुलना अध्याय-8 में दिए गए विवरण से कीजिए।

2. कुदाल और हल

आइए अब हम अपना ध्यान बंगाल की गीली ज़मीनों से हटाकर सूखे अंचलों पर और स्थायी कृषि के क्षेत्र से हटाकर झूम कृषि के क्षेत्र पर केंद्रित करें। आप उन परिवर्तनों को देखेंगे जो कृषक अर्थव्यवस्था की सीमाओं के बाहर की ओर विस्तार होने से आए, जिससे राजमहल की पहाड़ियों के इलाक़े में स्थित जंगल और चरागाह उस अर्थव्यवस्था में समा गए। आप यह भी देखेंगे कि इन परिवर्तनों के कारण इस क्षेत्र के भीतर तरह-तरह के झगड़े-झंझट कैसे उत्पन्न हुए।

2.1 राजमहल की पहाड़ियों में

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में, बुकानन ने राजमहल की पहाड़ियों का दौरा किया था। उसके वर्णन के अनुसार ये पहाड़ियाँ अभेद्य लगती थीं। यह एक ऐसा ख़तरनाक इलाक़ा था जहाँ बहुत कम यात्री जाने की हिम्मत करते थे। बुकानन जहाँ कहीं भी गया, वहाँ उसने निवासियों के व्यवहार को शत्रुतापूर्ण पाया। वे लोग कंपनी के अधिकारियों के प्रति आशंकित थे और उनसे बातचीत करने को तैयार नहीं थे। कई उदाहरणों में तो वे अपने घर-बार और गाँव छोड़कर भाग गए थे।

ये पहाड़ी लोग कौन थे? वे बुकानन के दौरे के प्रति इतने आशंकित क्यों थे? बुकानन की पत्रिका में हमें उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में इन लोगों की जो तरस खाने वाली हालत थी उसकी झलक मिलती है। उन स्थानों के बारे में उसने डायरी लिखी थी, जहाँ-जहाँ उसने भ्रमण किया था, लोगों से मुलाक़ात की थी और उनके रीति-रिवाज़ों को देखा था। यह पत्रिका हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रश्न खड़े करती है। किंतु यह हमेशा हमें उत्तर देने में सहायक नहीं होती है। उसकी यह डायरी समय के केवल एक क्षण-विशेष के बारे में ही बतलाती है, लोगों तथा स्थानों के लंबे इतिहास के बारे में नहीं बतलाती। ऐसे लंबे इतिहास के लिए इतिहासकारों को अन्य रिकार्डों की ओर मुड़ना होगा।

यदि हम अठारहवीं शताब्दी के परवर्ती दशकों के राजस्व अभिलेखों पर दृष्टिपात करें तो हम जान लेंगे कि इन पहाड़ी लोगों को पहाड़िया क्यों कहा जाता था। वे राजमहल की पहाड़ियों के इर्द-गिर्द रहा करते थे। वे जंगल की उपज से अपनी गुजर-बसर करते थे और झूम खेती किया करते थे। वे जंगल के छोटे-से हिस्से में झाड़ियों को काटकर और घास-फूँस को जलाकर ज़मीन साफ़ कर लेते थे और राख की पोटाश से उपजाऊ बनी ज़मीन पर ये पहाड़िया लोग अपने खाने के लिए तरह-तरह की दालें और ज्वार-बाजरा उगा लेते थे। वे अपने कुदाल से ज़मीन को थोड़ा खुरच लेते थे, कुछ वर्षों तक उस साफ़ की गई ज़मीन में खेती करते थे और फिर उसे कुछ वर्षों के लिए परती छोड़ कर नए इलाक़े में चले जाते थे जिससे कि उस ज़मीन में खोई हुई उर्वरता फिर से उत्पन्न हो जाती थी।

बुकानन कौन था?

फ़्रांसिस बुकानन एक चिकित्सक था जो भारत आया और बंगाल चिकित्सा सेवा में (1794 से 1815 तक) कार्य किया। कुछ वर्षों तक, वह भारत के गर्वनर जनरल लार्ड बेलेज़्ली का शल्य-चिकित्सक रहा। कलकत्ता (वर्तमान में कोलकत्ता) के अपने प्रवास के दौरान उसने कलकत्ता में एक चिड़ियाघर की स्थापना की, जो कलकत्ता अलीपुर चिड़ियाघर कहलाया। वे थोड़े समय के लिए वानस्पतिक उद्यान के प्रभारी रहे। बंगाल सरकार के अनुरोध पर उन्होंने ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में आने वाली भूमि का विस्तृत सर्वेक्षण किया। 1815 में वह बीमार हो गए और इंग्लैण्ड चले गए। अपनी माता की मृत्यु के पश्चात् वे उनकी जायदाद के वारिस बने और उन्होंने उनके वंश के नाम 'हैमितटन' को अपना लिया। इसलिए उन्हें अकसर बुकानन-हैमितटन भी कहा जाता है।

उन जंगलों से पहाड़िया लोग खाने के लिए *महुआ* के फूल इकट्ठे करते थे, बेचने के लिए रेशम के कोया और राल और काठकोयला बनाने के लिए लकड़ियाँ इकट्ठी करते थे। पेड़ों के नीचे जो छोटे-छोटे पौधे उग आते थे या परती ज़मीन पर जो घास-फूँस की हरी चादर-सी बिछ जाती थी वह पशुओं के लिए चरागाह बन जाती थी।

चित्र 10.8

राजमहल की पहाड़ियों में स्थित एक पहाड़ी गाँव का चित्र जो 1782 में विलियय होजेज द्वारा चित्रित किया गया था।

विलियम होजेज एक ब्रिटिश कलाकार था जो कैप्टेन कुक के साथ उसकी प्रशांत महासागर की दूसरी समुद्र यात्रा (1772-75) के दौरान प्रशांत क्षेत्र में गया था और वहाँ से भारत आया था। 1781 में वह भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड का मित्र बन गया था। क्लीवलैंड के निमंत्रण पर होजेज 1782 में उसके साथ जंगल महालों के भ्रमण पर गया था। वहाँ होजेज ने कई एक्वाटिंट तैयार किए थे। उस समय के अनेक चित्रकारों की तरह होजेज ने भी बड़े सुंदर-सुंदर रमणीय दृश्यों की खोज की थी। उस समय के चित्रोपम दृश्यों के खोजी कलाकार स्वच्छंदतावाद की विचारधारा से प्रेरित थे; इस विचारधारा के अंतर्गत प्रकृति की पूजा की जाती थी और उसके सौंदर्य एवं शक्ति की प्रशंसा की जाती थी। रूमानी कलाकार यह महसूस करते थे कि प्रकृति से संलाप संबंध बनाने के लिए यह आवश्यक है कि कलाकार प्रकृति के निकट संपर्क में आए, अपने ग्राम गीतों में प्रकृति का चित्रण करे, आधुनिक कृत्रिम सभ्यता से दूषित न हो, अज्ञात भूदृश्यों को खोजे और छाया एवं प्रकाश के अलौकिक आनन्द का लाभ उठाए। प्रकृति के इन्हीं रहस्यों की खोज में ही होजेज ने राजमहल की पहाड़ियों का भ्रमण किया था। उसे समतल-सपाट भूखंड नीरस लगे, जबकि विविधतापूर्ण, ऊँची-नीची, उबड़-खाबड़ ज़मीन में सुंदरता के दर्शन हुए। औपनिवशिक अधिकारी जिन भूदृश्यों को भयंकर तथा उजाड़, उपद्रवी जंगली लोगों का निवास स्थल मानते थे, वे दृश्य होजेज की चित्रकारी में मनमोहक और रमणीय दिखाई देते हैं।

➲ ऊपर दिए गए चित्र को देखिए और यह पता लगाइए कि होजेज ने राजमहल की पहाड़ियों को किसलिए रमणीय माना था।

एक्वाटिंट (ताम्रपट्टोत्कीर्णन) एक ऐसी तसवीर होती है जो ताम्रपट्टी में अम्ल की सहायता से चित्र के रूप में कटाई करके छापी जाती है।

शिकारियों, झूम खेती करने वालों, खाद्य बटोरने वालों, काठकोयला बनाने वालों, रेशम के कीड़े पालने वालों के रूप में पहाड़िया लोगों की ज़िंदगी इस प्रकार जंगल से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी। वे इमली के पेड़ों के बीच बनी अपनी झोपड़ियों में रहते थे और आम के पेड़ों की छाँह में आराम करते थे। वे पूरे प्रदेश को अपनी निजी भूमि मानते थे और यह भूमि उनकी पहचान और जीवन का आधार थी। वे बाहरी लोगों के प्रवेश का प्रतिरोध करते थे। उनके मुखिया लोग अपने समूह में एकता बनाए रखते थे, आपसी लड़ाई-झगड़े निपटा देते थे और अन्य जनजातियों तथा मैदानी लोगों के साथ लड़ाई छिड़ने पर अपनी जनजाति का नेतृत्व करते थे।

चित्र 10.9
विलियम होजेज द्वारा चित्रित जंगल प्रदेश का एक दृश्य।
यहाँ आप जंगल से ढकी हुई नीची पहाड़ियाँ, और ऊँची चोटियाँ भी देख सकते हैं जो कहीं भी वास्तव में 2000 फुट से ऊँची नहीं हैं। बीच में खड़ी दुरूह पहाड़ियाँ दिखलाकर होजेज उनकी दुर्गमता पर बल देना चाहता है।

इन पहाड़ियों को अपना मूलाधार बनाकर, पहाड़िया लोग बराबर उन मैदानों पर आक्रमण करते रहते थे जहाँ किसान एक स्थान पर बस कर अपनी खेती-बाड़ी किया करते थे। पहाड़ियों द्वारा ये आक्रमण ज़्यादातर अपने आपको विशेष रूप से अभाव या अकाल के वर्षों में जीवित रखने के लिए किए जाते थे। साथ ही, ये हमले मैदानों में बसे हुए समुदायों पर अपनी ताक़त दिखलाने का भी एक तरीक़ा था। इसके अलावा, ऐसे आक्रमण बाहरी लोगों के साथ अपने राजनीतिक संबंध बनाने के लिए भी किए जाते थे। मैदानों में रहने वाले ज़मींदारों को अकसर इन पहाड़ी मुखियाओं को नियमित रूप से ख़िराज देकर उनसे शांति ख़रीदनी पड़ती थी। इसी प्रकार, व्यापारी लोग भी इन पहाड़ियों द्वारा नियंत्रित रास्तों का इस्तेमाल करने की अनुमति प्राप्त करने हेतु उन्हें कुछ पथकर दिया करते थे। जब ऐसा पथकर पहाड़िया मुखियाओं को मिल जाता था तो वे व्यापारियों की रक्षा करते थे और यह भी आश्वासन देते थे कि कोई भी उनके माल को नहीं लूटेगा।

➲ चित्र 10.8 और 10.9 को देखिए। इन चित्रों द्वारा जनजातीय मनुष्य और प्रकृति के बीच के संबंधों को किस प्रकार दर्शाया गया है; वर्णन कीजिए।

इस प्रकार कुछ ले-देकर की गई शांति संधि अधिक लंबे समय तक नहीं चली। यह अठारहवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में उस समय भंग हो गई जब स्थिर खेती के क्षेत्र की सीमाएँ आक्रामक रीति से पूर्वी भारत में बढ़ाई जाने लगीं। अंग्रेज़ों ने जंगलों की कटाई-सफ़ाई के काम को प्रोत्साहित किया और ज़मींदारों तथा जोतदारों ने परती भूमि को धान के खेतों में बदल दिया। अंग्रेज़ों के लिए स्थायी कृषि का विस्तार आवश्यक था क्योंकि उससे राजस्व के स्रोतों में वृद्धि हो सकती थी, निर्यात के लिए फ़सल पैदा हो सकती थी और एक स्थायी, सुव्यवस्थित समाज की स्थापना हो सकती थी। वे जंगलों को उजाड़ मानते थे और वनवासियों

को असभ्य, बर्बर, उपद्रवी और क्रूर समझते थे जिन पर शासन करना उनके लिए कठिन था। इसलिए उन्होंने यही महसूस किया कि जंगलों का सफ़ाया करके, वहाँ स्थायी कृषि स्थापित करनी होगी और जंगली लोगों को पालतू व सभ्य बनाना होगा; उनसे शिकार का काम छुड़वाना होगा और खेती का धंधा अपनाने के लिए उन्हें राज़ी करना होगा।

ज्यों-ज्यों स्थायी कृषि का विस्तार होता गया, जंगलों तथा चरागाहों का क्षेत्र संकुचित होता गया। इससे पहाड़ी लोगों तथा स्थायी खेतीहरों के बीच झगड़ा तेज़ हो गया। पहाड़ी लोग पहले से अधिक नियमित रूप से बसे हुए गाँवों पर हमले बोलने लगे और ग्रामवासियों से अनाज और पशु छीन-झपट कर ले जाने लगे। औपनिवेशिक अधिकारियों ने उत्तेजित होकर इन पहाड़ियों पर काबू की भरसक कोशिशें कीं परंतु उनके लिए ऐसा करना आसान नहीं था।

1770 के दशक में ब्रिटिश अधिकारियों ने इन पहाड़ियों को निर्मूल कर देने की क्रूर नीति अपना ली और उनका शिकार और संहार करने लगे। तदोपरांत, 1780 के दशक में भागलपुर के कलेक्टर ऑगस्टस क्लीवलैंड ने शांति स्थापना की नीति प्रस्तावित की जिसके अनुसार पहाड़िया मुखियाओं को एक वार्षिक भत्ता दिया जाना था और बदले में उन्हें अपने आदमियों का चाल-चलन ठीक रखने की जिम्मेदारी लेनी थी। उनसे यह भी आशा की गई थी कि वे अपनी बस्तियों में व्यवस्था बनाए रखेंगे और अपने लोगों को अनुशासन में रखेंगे। लेकिन बहुत से पहाड़िया मुखियाओं ने भत्ता लेने से मना कर दिया। जिन्होंने इसे स्वीकार किया उनमें से अधिकांश अपने समुदाय में अपनी सत्ता खो बैठे। औपनिवेशिक सरकार के वेतनभोगी बन जाने से उन्हें अधीनस्थ कर्मचारी या वैतनिक मुखिया माना जाने लगा।

जब शांति स्थापना के लिए अभियान चल रहे थे तभी पहाड़िया लोग अपने आपको शत्रुतापूर्ण सैन्यबलों से बचाने के लिए और बाहरी लोगों से लड़ाई चालू रखने के लिए पहाड़ों के भीतरी भागों में चले गए। इसलिए जब 1810-11 की सर्दियों में बुकानन ने इस क्षेत्र की यात्रा की थी तो यह स्वाभाविक ही था कि पहाड़िया लोग बुकानन को संदेह और अविश्वास की दृष्टि से देखते। शांति स्थापना के अभियानों के अनुभव और क्रूरतापूर्ण दमन की यादों के कारण उनके मन में यह धारणा बन गई थी कि उनके इलाक़े में ब्रिटिश लोगों की घुसपैठ का क्या असर होने वाला है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि प्रत्येक गोरा आदमी एक ऐसी शक्ति का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो उनसे उनके जंगल और ज़मीन छीन कर उनकी जीवन शैली और जीवित रहने के साधनों को नष्ट करने पर उतारू है।

वस्तुतः इन्हीं दिनों उन्हें एक नए खतरे की सूचनाएँ मिलने लगी थीं और वह था संथाल लोगों का आगमन। संथाल लोग वहाँ के जंगलों का सफ़ाया करते हुए, इमारती लकड़ी को काटते हुए, ज़मीन जोतते हुए और चावल तथा कपास उगाते हुए उस इलाक़े में बड़ी संख्या में घुसे चले आ रहे थे। चूँकि संथाल बाशिंदों ने निचली पहाड़ियों पर अपना क़ब्ज़ा

जमा लिया था, इसलिए पहाड़ियों को राजमहल की पहाड़ियों में और भीतर की ओर पीछे हटना पड़ा। पहाड़िया लोग अपनी झूम खेती के लिए कुदाल का प्रयोग करते थे; इसलिए यदि कुदाल को पहाड़िया जीवन का प्रतीक माना जाए तो हल को नए बाशिंदों (संथालों) की शक्ति का प्रतिनिधि मानना होगा। हल और कुदाल के बीच की यह लड़ाई बहुत लंबी चली।

2.2 संथाल : अगुआ बाशिंदे

सन् 1810 के अंत में, बुकानन ने गंजुरिया पहाड़, जो कि राजमहल श्रृंखलाओं का एक भाग था, को पार किया और आगे के चट्टानी प्रदेश के बीच से निकलकर वह एक गाँव में पहुँच गया। वैसे तो यह एक पुराना गाँव था पर उसके आस-पास की ज़मीन खेती करने के लिए अभी-अभी साफ़ की गई थी। वहाँ के भूदृश्य को देखकर उसे पता चला कि 'मानव श्रम के समुचित प्रयोग से' उस क्षेत्र की तो काया ही पलट गई है। उसने लिखा, "गंजुरिया में अभी-अभी काफ़ी जुताई की गई है जिससे यह पता चलता है कि इसे कितने शानदर इलाक़े में बदला जा सकता है। मैं सोचता हूँ, इसकी सुंदरता और समृद्धि विश्व के किसी भी क्षेत्र जैसी विकसित की जा सकती है। यहाँ की ज़मीन अलबत्ता चट्टानी है लेकिन बहुत ही ज़्यादा बढ़िया है और बुकानन ने उतनी बढ़िया तंबाकू और सरसों और कहीं नहीं देखीं। पूछने पर उसे पता चला कि वहाँ संथालों ने कृषि क्षेत्र की सीमाएँ काफ़ी बढ़ा ली थीं। वे इस इलाक़े में 1800 के आस-पास आए थे, उन्होंने वहाँ रहने वाले पहाड़ी लोगों को नीचे के ढालों पर भगा दिया, जंगलों का सफ़ाया किया और फिर वहाँ बस गए।

संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में कैसे पहुँचे? संथाल 1780 के दशक के आस-पास बंगाल में आने लगे थे। ज़मींदार लोग खेती के लिए नयी भूमि तैयार करने और खेती का विस्तार करने के लिए उन्हें भाड़े पर रखते थे और ब्रिटिश अधिकारियों ने उन्हें जंगल महालों में बसने का

चित्र 10.10
संथाल प्रदेश में स्थित एक पहाड़ी ग्राम,
23 फ़रवरी 1856 के 'लंदन न्यूज' में प्रकाशित चित्र।
राजमहल की निचली पहाड़ियों में स्थित गाँव का यह चित्र 1850 के दशक के प्रारंभ में वाल्टरशेरबिल द्वारा चित्रित किया गया था। यह गाँव शांतिपूर्ण, नीरव और रमणीय प्रतीत होता है। बाहरी दुनिया का इस पर कोई असर हुआ प्रतीत नहीं होता।

➲ चित्र 10.12 से इस संथाल गाँव के चित्र की तुलना कीजिए।

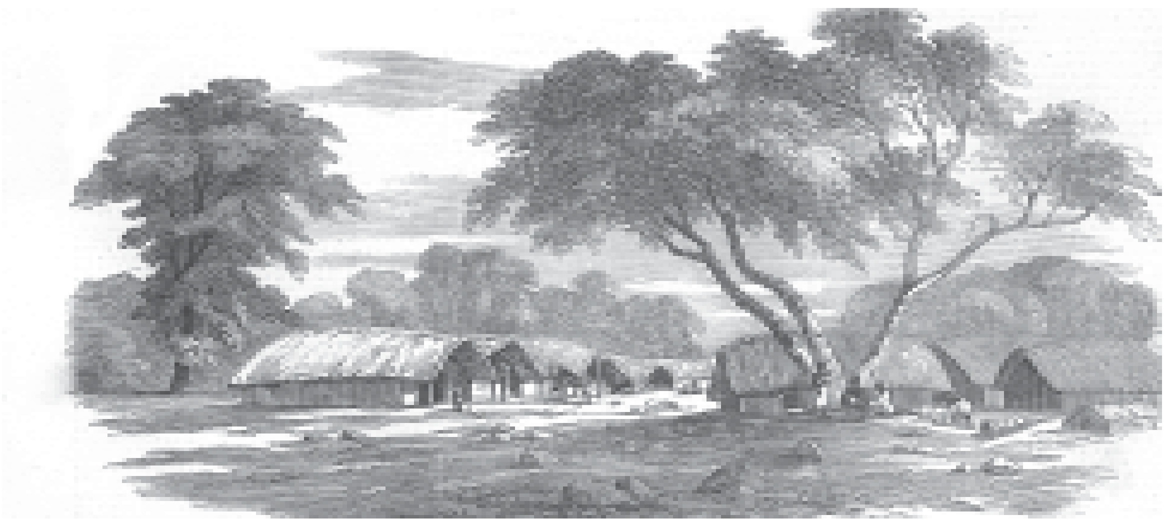

निमंत्रण दिया। जब ब्रिटिश लोग पहाड़ियों को अपने बस में करके स्थायी कृषि के लिए एक स्थान पर बसाने में असफल रहे तो उनका ध्यान संथालों की ओर गया। पहाड़िया लोग जंगल काटने के लिए हल को हाथ लगाने को तैयार नहीं थे और अब भी उपद्रवी व्यवहार करते थे। जबकि, इसके विपरीत, संथाल आदर्श बाशिंदे प्रतीत हुए, क्योंकि उन्हें जंगलों का सफ़ाया करने में कोई हिचक नहीं थी और वे भूमि को पूरी ताक़त लगाकर जोतते थे।

संथालों को ज़मीनें देकर राजमहल की तलहटी में बसने के लिए तैयार कर लिया गया। 1832 तक, ज़मीन के एक काफ़ी बड़े इलाक़े को दामिन-इ-कोह के रूप में सीमांकित कर दिया गया। इसे संथालों की भूमि घोषित कर दिया गया। उन्हें इस इलाके के भीतर रहना था, हल चलाकर खेती करनी थी और स्थायी किसान बनना था। संथालों को दी जाने वाली भूमि के अनुदान-पत्र में यह शर्त थी कि उनको दी गई भूमि के कम-से-कम दसवें भाग को साफ़ करके पहले दस वर्षों के भीतर जोतना था। इस पूरे क्षेत्र का सर्वेक्षण करके उसका नक्शा तैयार किया गया। इसके चारों ओर खंबे गाड़कर इसकी परिसीमा निर्धारित कर दी गई और इसे मैदानी इलाके के स्थायी कृषकों की दुनिया से और पहाड़िया लोगों की पहाड़ियों से अलग कर दिया गया।

दामिन-इ-कोह के सीमांकन के बाद, संथालों की बस्तियाँ बड़ी तेज़ी से बढ़ीं, संथालों के गाँवों की संख्या जो 1838 में 40 थी, तेज़ी से बढ़कर 1851 तक 1,473 तक पहुँच गई। इसी अवधि में, संथालों की जनसंख्या जो केवल 3,000 थी, बढ़कर 82,000 से भी अधिक हो गई। जैसे-जैसे खेती का विस्तार होता गया, वैसे-वैसे कंपनी की तिजोरियों में राजस्व राशि में वृद्धि होती गई।

उन्नीसवीं शताब्दी के संथाल गीतों और मिथकों में उनकी यात्रा के लंबे इतिहास का बार-बार उल्लेख किया गया है: उनमें कहा गया है कि संथाल लोग अपने लिए बसने योग्य स्थान की खोज में बराबर बिना थके चलते ही रहते थे। अब यहाँ दामिन-इ-कोह में आकर मानो उनकी इस यात्रा को पूर्ण विराम लग गया।

जब संथाल राजमहल की पहाड़ियों पर बसे तो पहले पहाड़िया लोगों ने इसका प्रतिरोध किया पर अंततोगत्वा वे इन पहाड़ियों में भीतर की ओर चले जाने के लिए मजबूर कर दिए गए। उन्हें निचली पहाड़ियों तथा घाटियों में नीचे की ओर आने से रोक दिया गया और ऊपरी पहाड़ियों के चट्टानी और अधिक बंजर इलाकों तथा भीतरी शुष्क भागों तक सीमित कर दिया गया। इससे उनके रहन-सहन तथा जीवन पर बुरा प्रभाव पड़ा और आगे चलकर वे गरीब हो गए। झूम खेती नयी-से-नयी ज़मीनें खोजने और भूमि की प्राकृतिक उर्वरता का उपयोग करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। अब सर्वाधिक उर्वर ज़मीनें उनके लिए दुर्लभ हो गईं क्योंकि वे अब दामिन का हिस्सा बन

चुकी थीं। इसलिए पहाड़िया लोग खेती के अपने तरीके (झूम खेती) को आगे सफलतापूर्वक नहीं चला सके। जब इस क्षेत्र के जंगल खेती के लिए साफ़ कर दिए गए तो पहाड़िया शिकारियों को भी समस्याओं का सामना करना पड़ा। इसके विपरीत संथाल लोगों ने अपनी पहले वाली खानबदोश ज़िंदगी को छोड़ दिया था। अब वे एक जगह बस गए थे और बाज़ार के लिए कई तरह के वाणिज्यिक फ़सलों की खेती करने लगे थे और व्यापारियों तथा साहूकारों के साथ लेन-देन करने लगे थे।

चित्र 10.11
सिधू मांझी, संथाल विद्रोह का नेता

किंतु, संथालों ने भी जल्दी ही यह समझ लिया कि उन्होंने जिस भूमि पर खेती करनी शुरू की थी वह उनके हाथों से निकलती जा रही है। संथालों ने जिस ज़मीन को साफ़ करके खेती शुरू की थी उस पर सरकार (राज्य) भारी कर लगा रही थी, साहूकार (दिकू) लोग बहुत ऊँची दर पर ब्याज लगा रहे थे और कर्ज़ अदा न किए जाने की सूरत में ज़मीन पर ही कब्ज़ा कर रहे थे, और ज़मींदार लोग दामिन इलाके पर अपने नियंत्रण का दावा कर रहे थे।

1850 के दशक तक, संथाल लोग यह महसूस करने लगे थे कि अपने लिए एक आदर्श संसार का निर्माण करने के लिए, जहाँ उनका अपना शासन हो, ज़मींदारों, साहूकारों और औपनिवेशिक राज के

चित्र 10.12
संथाल, ब्रिटिश राज के सिपाहियों से युद्ध करते हुए। 23 फ़रवरी 1856 के *इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़* में प्रकाशित चित्र। इस विद्रोह ने संथालों के प्रति ब्रिटिश धारणा को बदल दिया। जो गाँव पहले नीरव एवं शांत दिखाई देते थे (चित्र 10.10) अब नृशंस एवं बर्बरतापूर्ण कृत्यों के स्थान बन गए।

➲ कल्पना कीजिए कि आप 'इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़' के पाठक हैं। चित्र 10.12, 10.13 और 10.14 में चित्रित दृश्यों के प्रति आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी? इन चित्रों से आपके मन में संथालों की क्या-क्या छवि बनती है?

चित्र 10.13
संथालों के गाँव जल रहे है। 23 फ़रवरी 1856 के *इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़* में प्रकाशित चित्र। विद्रोह कुचल दिए जाने के बाद, इलाके की छानबीन की गई, संदिग्ध व्यक्तियों को पकड़ लिया गया और गाँवों को आग लगा दी गई। जलते हुए गाँवों के चित्र ब्रिटेन में आम जनता को दिखाए गए, गर्वपूर्वक यह दर्शाने के लिए कि ब्रिटिश कितने शक्तिशाली हैं और उनमें विद्रोह को कुचल डालने और औपनिवेशिक व्यवस्था को थोपने की कितनी अधिक योग्यता है।

चित्र 10.14
संथाल कैदियों को ले जाया जा रहा है। इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 1856
ध्यान दीजिए कि ऐसे चित्र किस प्रकार के राजनीतिक संदेश देते हैं। आप देख सकते हैं कि चित्र के बीचों-बीच ब्रिटिश अधिकारी विजयगर्वित होकर किस शान से हाथी पर सवार हैं। घोड़े पर बैठा हुआ एक अधिकारी हुक्का गुड़गुड़ा रहा है; यह तसवीर यह दिखलाती है कि परेशानी का समय ख़त्म हो गया है, विद्रोह कुचल दिया गया है। विद्रोही अब जंज़ीरों से बँधे जेल ले जाए जा रहे हैं कंपनी के सिपाही उन्हें चारों ओर से घेरे हुए है। इस तरह की तसवीरें, जिनमें ब्रिटिश हुकूमत को अजेय दर्शाया गया है, ब्रिटिश जनता को अपनी ताक़त के बारे में आश्वस्त करने के लिए पर्याप्त थीं।

विरुद्ध विद्रोह करने का समय अब आ गया है। 1855-56 के संथाल विद्रोह के बाद संथाल परगने का निर्माण कर दिया गया, जिसके लिए 5,500 वर्गमील का क्षेत्र भागलपुर और बीरभूम जिलों में से लिया गया। औपनिवेशिक राज को आशा थी कि संथालों के लिए नया परगना बनाने और उसमें कुछ विशेष क़ानून लागू करने से संथाल लोग संतुष्ट हो जाएँगे।

2.3 बुकानन का विवरण

हम बुकानन के विवरण को अपनी जानकारी का आधार मान रहे हैं। लेकिन उसकी रिपोर्टों को पढ़ते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि वह ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का एक कर्मचारी था। उसकी यात्राएँ केवल भूदृश्यों के प्यार और अज्ञात की खोज से ही प्रेरित नहीं थीं। वह नक्शा नवीसों, सर्वेक्षकों, पालकी उठाने वालों कुलियों आदि के बड़े दल के साथ सर्वत्र यात्रा करता था। उसकी यात्राओं का खर्च ईस्ट इंडिया कंपनी उठाती थी क्योंकि उसे उन सूचनाओं की आवश्यकता थी जो बुकानन प्रत्याशित रूप से इकट्ठी करता था। बुकानन को यह साफ़-साफ़ हिदायत दी जाती थी कि उसे क्या देखना, खोजना और लिखना है। वह जब भी अपने लोगों की फ़ौज के साथ किसी गाँव में आता तो उसे तत्काल सरकार के एक एजेंट के रूप में ही देखा जाता था।

जब कंपनी ने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बना लिया और अपने व्यवसाय का विकास कर लिया तो वह उन प्राकृतिक साधनों की खोज में जुट गई जिन पर कब्ज़ा करके उनका मनचाहा उपयोग कर सकती थी। उसने परिदृश्यों तथा राजस्व स्रोतों का सर्वेक्षण किया, खोज यात्राएँ आयोजित कीं, और जानकारी इकट्ठी करने के लिए अपने भूविज्ञानियों, भूगोलवेत्ताओं, वनस्पति विज्ञानियों और चिकित्सकों को भेजा। निस्संदेह असाधारण प्रेक्षण शक्ति का धनी बुकानन ऐसा ही एक व्यक्ति था। बुकानन जहाँ कहीं भी गया, वहाँ उसने पत्थरों तथा चट्टानों और वहाँ की भूमि के भिन्न-भिन्न स्तरों तथा परतों को ध्यानपूर्वक देखा। उसने वाणिज्यिक दृष्टि से मूल्यवान पत्थरों तथा खनिजों को खोजने की कोशिश की; उसने लौह खनिज और अबरक, ग्रेनाइट तथा साल्टपीटर से संबंधित सभी स्थानों का पता लगाया। उसने सावधानीपूर्वक नमक बनाने और कच्चा लोहा निकालने की स्थानीय पद्धतियों का निरीक्षण किया।

जब बुकानन किसी भूदृश्य के बारे में लिखता था तो वह अकसर इतना ही नहीं लिखता था कि उसने क्या देखा है और भूदृश्य कैसा था, बल्कि वह यह भी लिखता था कि उसमें फेरबदल करके उसे अधिक उत्पादक कैसे बनाया जा सकता है– वहाँ कौन-सी फ़सलें बोई जा सकती हैं, कौन-से पेड़ काटे जा सकते हैं और कौन-से उगाए जा सकते हैं और हमें यह भी याद रखना होगा कि उसकी सूक्ष्म दृष्टि और प्राथमिकताएँ स्थानीय निवासियों से भिन्न होती थीं: क्या आवश्यक है इस बारे में उसका आकलन कंपनी के वाणिज्यिक

स्रोत 3

संथालों के बारे में बुकानन के विचार

नयी ज़मीनें साफ़ करने में वे बहुत होशियार होते हैं लेकिन नीचता से रहते हैं। उनकी झोपड़ियों में कोई बाड़ नहीं होती और दीवारें सीधी खड़ी की गई छोटी-छोटी सटी हुई लकड़ियों की बनी होती हैं जिन पर भीतर की ओर लेप (पलस्तर) लगा होता है। झोपड़ियाँ छोटी और मैली-कुचैली होती हैं; उनकी छत सपाट होती हैं, उनमें उभार बहुत कम होता है।

स्रोत 4

कडुया के पास की चट्टानें

बुकानन की पत्रिका निम्नलिखित ऐसे प्रेक्षणों से भरी पड़ी है:

> आगे लगभग एक मील चलने के बाद में (मैं) चट्टानों के एक शिलाफलक पर आ गया; जिसका कोई यह एक छोटा दानेदार ग्रेनाइट है जिसमें लाल-लाल फेल्डस्पार, क्वार्ट्ज़ और काला अबरक लगा है... वहाँ से आधा मील से अधिक की दूरी पर मैं एक अन्य चट्टान पर आया वह भी स्तरहीन थी और उसमें बारीक दानों वाला ग्रेनाइट था जिसमें पीला-सा फेल्डस्पार, सफ़ेद-सा क्वार्ट्ज और काल, अबरक था।

सरोकारों से और प्रगति के संबंध में आधुनिक पाश्चात्य विचारधारा से निर्धारित होता था। वह अनिवार्य रूप से वनवासियों की जीवन-शैली का आलोचक था और यह महसूस करता था कि वनों को कृषि भूमि में बदलना ही होगा।

स्रोत 5

वनों की बटाई और स्थायी कृषि के बारे में

निचली राजमहल की पहाड़ियों में एक गाँव से गुजरते हुए, बुकानन ने लिखा:

इस प्रदेश का दृश्य बहुत ही बढ़िया है; यहाँ की खेती विशेष रूप से, घुमावदार संकरी घाटियों में धान की फ़सल, बिखरे हुए पेड़ों के साथ साफ़ की गई जमीन, और चट्टानी पहाड़ियाँ सभी अपने आप में पूर्ण हैं, कमी है तो बस इस क्षेत्र में कुछ प्रगति की और विस्तृत तथा उन्नत खेती की, जिनके लिए यह प्रदेश अत्यंत संवेदनशील है। यहाँ लकड़ी की जगह टसर और लाख के लिए आवश्यकतानुसार बड़े-बड़े बागान लगाए जा सकते हैं; बाक़ी जंगल को भी साफ़ किया जा सकता है, और जो भाग इस प्रयोजन के लिए उपयुक्त न हो वहाँ पनई ताड़ और महुआ के पेड़ लगाए जा सकते हैं।

➲ चर्चा कीजिए...

बुकानन का वर्णन विकास के संबंध में उसके विचारों के बारे में क्या बतलाता है? उद्धरणों से उदाहरण देते हुए अपनी दलील पेश कीजिए। यदि आप एक पहाड़िया वनवासी होते तो उसके इन विचारों के प्रति आपकी प्रतिक्रिया क्या होती?

3. देहात में विद्रोह

बम्बई दक्कन

आप पढ़ चुके हैं कि औपनिवेशिक बंगाल के किसानों और ज़मींदारों और राजमहल की पहाड़ियों के पहाड़िया और संथाल लोगों के जीवन में किस प्रकार परिवर्तन आ रहा था। आइए अब पश्चिम भारत और परवर्ती अवधि पर दृष्टिपात करें और पता लगाएँ कि बम्बई दक्कन के देहाती क्षेत्र में क्या हो रहा था।

ऐसे परिवर्तनों का पता लगाने का एक तरीक़ा है वहाँ के किसान विद्रोह पर ध्यान केंद्रित करना। ऐसे नाज़ुक दौर में विद्रोही अपना गुस्सा और प्रकोपोन्माद दिखलाते हैं; वे जिसे अन्याय और अपने दु:ख-दर्द का कारण समझते हैं उनके खिलाफ़ आवाज़ बुलंद करते हैं। यदि हम उनकी नाराज़गी के आधारभूत कारणों को जानने का प्रयत्न करते हैं और उनके गुस्से की परतें उधेड़ने लगते हैं तो हम उनके जीवन और अनुभव की झलक देख पाते हैं जो अन्यथा हमसे छिपी रहती है। विद्रोहों के बारे में ऐसे अभिलेख भी उपलब्ध होते हैं, जिनका इतिहासकार अवलोकन कर सकते हैं। विद्रोहियों की करतूतों से उत्तेजित होकर और पुन: व्यवस्था स्थापित करने की उत्कट इच्छा से, राज्य के प्राधिकारी केवल विद्रोह को ही दबाने का प्रयत्न नहीं करते, बल्कि वे उसे जानने-बूझने की कोशिश करते हैं और उसके कारणों की भी जाँचा करते हैं जिससे कि नीतियाँ निर्धारित की जा सकें और शांति की स्थापना हो सके। ऐसी जाँच-पड़ताल से साक्ष्य उत्पन्न होता है जिसके बारे में इतिहासकार शोध कर सकें।

स्रोत 6

उस दिन सूपा में

16 मई 1875 को, पूना के जिला मजिस्ट्रेट ने पुलिस आयुक्त को लिखा:

शनिवार दिनांक 15 मई को सूपा में आने पर मुझे इस उपद्रव का पता चला। एक साहूकार का घर पूरी तरह जला दिया गया; लगभग एक दर्जन मकानों को तोड़ दिया गया और उनमें घुसकर वहाँ के सारे सामान को आग लगा दी गई। खाते पत्र, बांड, अनाज, देहाती कपड़ा, सड़कों पर लाकर जला दिया गया, जहाँ राख़ के ढेर अब भी देखे जा सकते हैं।

मुख्य कांस्टेबल ने 50 लोगों को गिरफ्तार किया। लगभग 2000 रु. का चोरी का माल छुड़ा लिया गया। अनुमानत: 25,000 रु. से अधिक की हानि हुई। साहूकारों का दावा है कि 1 लाख रु. से ज़्यादा का नुक़सान हुआ है

दक्कन दंगा आयोग

साहूकार ऐसा व्यक्ति होता था जो पैसा उधार देता था और साथ ही व्यापार भी करता था।

➲ लेखक द्वारा प्रयुक्त भाषा या शब्दावली से अकसर उसके पूर्वाग्रहों का पता चल जाता है, स्रोत 7 को सावधानीपूर्वक पढ़िए और उन शब्दों को छाँटिए जिनसे लेखक के पूर्वाग्रहों का पता चलता है। चर्चा कीजिए कि उस इलाके का रैयत उसी स्थिति का किन शब्दों में वर्णन करता होगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, भारत के विभिन्न प्रांतों के किसानों ने साहूकारों और अनाज के व्यापारियों के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए। ऐसा ही एक दक्कन में 1875 में हुआ।

3.1 लेखा बहियाँ जला दी गईं

यह आंदोलन पूना (आधुनिक पुणे) जिले के एक बड़े गाँव सूपा में शुरू हुआ। सूपा एक विपणन केंद्र (मंडी) था जहाँ अनेक व्यापारी और साहूकार रहते थे। 12 मई 1875 को, आसपास के ग्रामीण इलाकों के रैयत (किसान) इकट्ठे हो गए, उन्होंने साहूकारों से उनके बही-खातों और ऋणबंधों की माँग करते हुए उन पर हमला बोल दिया। उन्होंने उनके बही-खाते जला दिए, अनाज की दुकानें लूट लीं और कुछ मामलों में तो साहूकारों के घरों को भी आग लगा दी।

पूना से यह विद्रोह अहमदनगर में फैल गया। फिर अगले दो महीनों में यहाँ और भी आग फैल गई और 6,500 वर्ग किलोमीटर का इलाका इनकी चपेट में आ गया। तीस से अधिक गाँव इससे कुप्रभावित हुए। सब जगह विद्रोह का स्वरूप एकसमान ही था: साहूकारों पर हमला किया गया, बही-खाते जला दिए गए और ऋणबंध नष्ट कर दिए गए। किसानों के हमलों से घबराकर साहूकार गाँव छोड़कर भाग गए, अधिकतर मामलों में वे अपनी संपत्ति और धन-दौलत भी वहीं पीछे छोड़ गए।

जब विद्रोह फैला तो ब्रिटिश अधिकारियों की आँखों के सामने 1857 का गदर दृश्य आ गया (अध्याय 11 भी देखिए)। विद्रोही किसानों के गाँवों में पुलिस थाने स्थापित किए गए। जल्दी से सेनाएँ बुला ली गईं। 95 व्यक्तियों को गिरफ़्तार कर लिया गया और उनमें से बहुतों को दंडित दिया गया। लेकिन देहात को काबू करने में कई महीने लग गए।

स्रोत 7

समाचारपत्र में छपी रिपोर्ट

'रैयत और साहूकार' शीर्षक नामक निम्नलिखित रिपोर्ट 6 जून 1876 के 'नेटिव ओपीनियन' नामक समाचार पत्र में छपी और उसे मुंबई के नेटिव न्यूज़पेपर्स की रिपोर्ट में यथावत उद्धृत किया गया (हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है):

"वे (रैयत) सर्वप्रथम अपने गाँवों की सीमाओं पर यह देखने के लिए जासूसी करते हैं कि क्या कोई सरकारी अधिकारी आ रहा है और अपराधियों को समय रहते उनके आने की सूचना दे देते हैं। फिर वे एक झुंड बनाकर अपने ऋणदाताओं के घर जाते हैं और उनसे उनके ऋणपत्र और अन्य दस्तावेज़ माँगते हैं और इनकार करने पर ऋणदाताओं पर हमला करके छीन लेते हैं। यदि ऐसी किसी घटना के समय कोई सरकारी अधिकारी उन गाँवों की ओर आता हुआ दिखाई दे जाता है तो गुप्तचर अपराधियों को इसकी ख़बर पहुँचा देते हैं और अपराधी समय रहते ही तितर-बितर हो जाते हैं"।

ऋणपत्र और दस्तावेज़ क्यों जलाए गए थे? यह विद्रोह क्यों हुआ? इससे हमें दक्कन के देहात के बारे में और वहाँ औपनिवेशिक शासन में हुए कृषि या भूमि संबंधी परिवर्तनों के बारे में क्या पता चलता है? आइए उन्नीसवीं शताब्दी में हुए परिवर्तनों के लंबे इतिहास पर दृष्टिपात करें।

3.2 एक नयी राजस्व प्रणाली

जैसे-जैसे ब्रिटिश शासन बंगाल से भारत के अन्य भागों में फैलता गया वहाँ भी राजस्व की नयी प्रणालियाँ लागू कर दी गईं। इस्तमरारी बंदोबस्त को बंगाल से बाहर बिरले ही लागू किया गया।

ऐसा क्यों किया गया? इसका एक कारण तो यह था कि 1810 के बाद खेती की क़ीमतें बढ़ गईं, जिससे उपज के मूल्य में वृद्धि हुई और बंगाल के ज़मींदारों की आमदनी में इज़ाफ़ा हो गया। चूँकि राजस्व की माँग इस्तमरारी बंदोबस्त के तहत तय की गई थी, इसलिए औपनिवेशिक सरकार इस बढ़ी हुई आय में अपने हिस्से का कोई दावा नहीं कर सकती थी। अपने वित्तीय संसाधनों को बढ़ाने की उत्कट इच्छा से, औपनिवेशिक सरकार को अपने भू-राजस्व को अधिक से अधिक बढ़ाने के तरीक़ों पर विचार करना पड़ा। इसलिए उन्नीसवीं शताब्दी में औपनिवेशिक शासन में शामिल किए गए प्रदेशों में राजस्व बंदोबस्त किए गए।

अन्य भी कई कारण थे। जब अधिकारी नीतियाँ निर्धारित करते हैं तो उनकी विचारधारा उन आर्थिक सिद्धांतों से अत्यधिक प्रभावित रहती है जिनसे वे अधिकारी पहले से परिचित होते हैं। 1820 के दशक तक इंग्लैंड में डेविड रिकार्डो एक जाने-माने अर्थशास्त्री के रूप में विख्यात थे। औपनिवेशिक अधिकारियों ने अपने महाविद्यालयी जीवन में रिकार्डो के विचारों का अध्ययन किया था। महाराष्ट्र में जब ब्रिटिश अधिकारियों ने 1820 के दशक में प्रारंभिक बंदोबस्त की शर्तें करने का काम हाथ में लिया तो वे इन्हीं में से कुछ विचारों के अनुसार कार्रवाई करने लगे।

रिकार्डो के विचारों के अनुसार भूस्वामी को उस समय लागू 'औसत लगानों' को प्राप्त करने का ही हक़ होना चाहिए। जब भूमि से 'औसत लगान' से अधिक प्राप्ति होने लगे तो भूस्वामी को अधिशेष आय होगी जिस पर सरकार को कर लगाने की आवश्यकता होगी। यदि कर नहीं लगाया गया तो किसान किरायाजीवी में बदल जाएँगे और उनकी अधिशेष आय का भूमि के सुधार में उत्पादक रीति से निवेश नहीं होगा। भारत में अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने सोचा कि बंगाल के इतिहास ने रिकार्डो के सिद्धांत की पुष्टि कर दी है। वहाँ ज़मींदार लोग किरायाजीवियों के रूप में बदल गए प्रतीत हुए क्योंकि उन्होंने अपनी ज़मीनें पट्टे पर दे दीं और किराये की आमदनी पर निर्भर रहने लगे। इसलिए ब्रिटिश अधिकारियों के विचार से अब यह आवश्यक था कि एक भिन्न राजस्व प्रणाली अपनाई जाए।

किरायाजीवी शब्द ऐसे लोगों का द्योतक है जो अपनी संपत्ति के किराए की आय पर जीवनयापन करते हैं।

जो राजस्व प्रणाली बम्बई दक्कन में लागू की गई उसे रैयतवाड़ी कहा जाता है। बंगाल में लागू की गई प्रणाली के विपरीत, इस प्रणाली के

अंतर्गत राजस्व की राशि सीधे रैयत के साथ तय की जाती थी। भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि से होने वाली औसत आय का अनुमान लगा लिया जाता था। रैयत की राजस्व अदा करने की क्षमता का आकलन कर लिया जाता था और सरकार के हिस्से के रूप में उसका एक अनुपात निर्धारित कर दिया जाता था। हर 30 साल के बाद ज़मीनों का फिर से सर्वेक्षण किया जाता था और राजस्व की दर तदनुसार बढ़ा दी जाती थी। इसलिए राजस्व की माँग अब चिरस्थायी नहीं रही थी।

3.3 राजस्व की माँग और किसान का कर्ज़

बम्बई दक्कन में पहला राजस्व बंदोबस्त 1820 के दशक में किया गया। माँगा गया राजस्व इतना अधिक था कि बहुत से स्थानों पर किसान अपने गाँव छोड़कर नए क्षेत्रों में चले गए। जिन इलाकों की ज़मीन घटिया किस्म की थी और वर्षा भी कम ज़्यादा होती थी, खास तौर पर समस्या और भी विकट थी। जब वर्षा नहीं होती थी और फ़सल खराब होती थी तो किसानों के लिए राजस्व अदा करना असंभव हो जाता था। फिर भी, राजस्व इकट्‌ठा करने वाले प्रभारी कलेक्टर अपनी कार्यकुशलता को प्रदर्शित करने और अपने बड़े अधिकारियों को प्रसन्न करने के लिए अत्यंत उत्कट रहते थे। इसलिए वे अत्यंत कठोरतापूर्वक राजस्व वसूल करने का प्रयत्न करते थे। जब कोई किसान अपना राजस्व नहीं दे पाता था तो उसकी फ़सलें ज़ब्त कर ली जाती थीं और समूचे गाँव पर जुर्माना ठोक दिया जाता था।

1830 के दशक तक आते-आते यह समस्या और भी गंभीर हो गई। सन् 1832 के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतों में तेज़ी से गिरावट आई और लगभग डेढ़ दशक तक इस स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। इसके परिणामस्वरूप किसानों की आय में और भी गिरावट आई। इसी दौरान, 1832-34 के वर्षों में देहाती इलाके अकाल की चपेट में आकर बरबाद हो गए। दक्कन का एक-तिहाई पशुधन मौत के मुँह में चला गया और आधी मानव जनसंख्या भी काल का ग्रास बन गई। और जो बचे, उनके पास भी उस संकट का सामना करने के लिए खाद्यान्न नहीं था। राजस्व की बकाया राशियाँ आसमान को छूने लगीं।

ऐसे समय में किसान लोग कैसे जीवित रहे? उन्होंने राजस्व कैसे अदा किया, अपनी जरूरत की चीज़ों को कैसे जुटाया, अपने हल-बैल कैसे खरीदे अथवा बच्चों की शादियाँ कैसे कीं?

यह सब करने के लिए पैसा उधार लेने के अलावा उनके पास और कोई चारा नहीं था। ऋणदाता से पैसा उधार लेकर ही राजस्व चुकाया जा सकता था लेकिन यदि रैयत ने एक बार ऋण ले लिया तो उसे वापस करना उसके लिए कठिन हो गया। कर्ज़ बढ़ता गया, उधार की राशियाँ बकाया रहती गईं और ऋणदाताओं पर किसानों की निर्भरता बढ़ती गई। अब स्थिति यहाँ तक बिगड़ गई थी कि किसानों को अपनी रोज़मर्रा की जरूरतों को खरीदने और अपने उत्पादन के खर्च को पूरा करने के लिए भी कर्ज़े लेने पड़ते थे। 1840 के दशक तक, अधिकारियों को भी इस

बात का साक्ष्य मिलने लगा था कि सभी जगह के किसान कर्ज़ के बोझ के तले भयंकर रूप से दबे जा रहे थे।

1840 के दशक के मध्य में एक विशेष प्रकार के आर्थिक पुनरूत्थान के लक्षण दिखाई देने लगे। तब अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने यह महसूस करना शुरू कर दिया कि 1820 के दशक में किए गए राजस्व संबंधी बंदोबस्त कठोरतापूर्ण थे। माँगा गया राजस्व बहुत ज़्यादा था, व्यवस्था कठोर एवं लचकहीन थी, और किसानों की अर्थव्यवस्था का भट्ठा बैठने वाला था। इसलिए खेती का विस्तार करने के लिए किसानों को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से राजस्व संबंधी माँग को कुछ हलका किया गया। 1845 के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतें शनैः शनैः बढ़ती गईं। किसान अपने कृषि क्षेत्र को बढ़ाने लगे थे, इसके लिए वे नए-नए इलाकों में जा रहे थे और गोचर भूमियों को कृषि भूमि में बदल रहे थे। लेकिन किसानों को अपनी खेती का विस्तार करने के लिए अधिक हल-बैल चाहिए थे। उन्हें बीज और ज़मीन खरीदने के लिए पैसे की ज़रूरत थी। इन सब कामों के लिए उन्हें एक बार फिर पैसा उधार लेने के लिए ऋणदाताओं के पास जाना पड़ा।

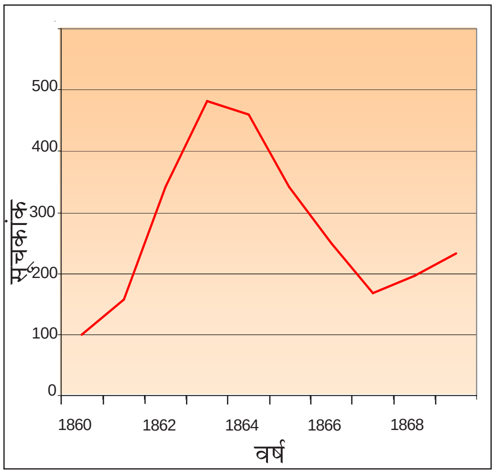

चित्र 10.15
कपास में तेज़ी
इस ग्राफ़ में अंकित रेखा कपास की क़ीमतों में आई तेज़ी और गिरावट को दिखाती है।

3.4 फिर कपास में तेज़ी आई

1860 के दशक से पहले, ब्रिटेन में कच्चे माल के तौर पर आयात की जाने वाली समस्त कपास का तीन-चौथाई भाग अमेरिका से आता था ब्रिटेन के सूती वस्त्रों के विनिर्माता काफ़ी लंबे अरसे से अमेरिकी कपास पर अपनी निर्भरता के कारण बहुत परेशान थे। अगर यह स्रोत बंद हो गया तो हमारा क्या होगा? इस प्रश्न से विचलित होकर, वे बड़े उत्सुकता से कपास की आपूर्ति के वैकल्पिक स्रोत खोज रहे थे।

1857 में, ब्रिटेन में कपास आपूर्ति संघ की स्थापना हुई और 1859 में मैनचेस्टर कॉटन कंपनी बनाई गई। उनका उद्देश्य "दुनिया के हर भाग में कपास के उत्पादन को प्रोत्साहित करना था जिससे कि उनकी कंपनी

चित्र 10.16
कपास ढोने वाली गाड़ियाँ एक बरगद के पेड़ के नीचे खड़ी हैं।
इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़ 13 दिसंबर 1862

का विकास हो सके।" भारत को एक ऐसा देश समझा गया जो अमेरिका से कपास की आपूर्ति बंद हो जाने की सूरत में, लंकाशायर को कपास भेज सकेगा। भारत की भूमि और जलवायु दोनों ही कपास की खेती के लिए उपयुक्त थे और यहाँ सस्ता श्रम उपलब्ध था।

जब सन् 1861 में अमेरिकी गृहयुद्ध छिड़ गया तो ब्रिटेन के कपास क्षेत्र (मंडी तथा कारखानों) में तहलका मच गया। अमेरिका से आने वाली कच्ची कपास के आयात में भारी गिरावट आ गई। वह सामान्य मात्रा का 3 प्रतिशत से भी कम हो गया: 1861 में जहाँ 20 लाख गाँठें (हर गाँठ 400 पाउंड की) आई थीं वहीं 1862 में केवल 55 हज़ार गाँठों का आयात हुआ। भारत तथा अन्य देशों को बड़ी व्यग्रता के साथ यह संदेश भेजा गया कि ब्रिटेन को कपास का अधिक मात्रा में निर्यात करें। बम्बई में, कपास के सौदागरों ने कपास की आपूर्ति का आकलन करने और कपास की खेती को अधिकाधिक प्रोत्साहन देने के लिए कपास पैदा करने वाले ज़िलों का दौरा किया। जब कपास की कीमतों में उछाल आया (चित्र 10.15 देखिए) तो बम्बई के कपास निर्यातकों ने ब्रिटेन की माँग को पूरा करने के लिए अधिक से अधिक कपास खरीदने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने शहरी साहूकारों को अधिक से अधिक अग्रिम, राशियाँ दी ताकि वे भी आगे उन ग्रामीण ऋणदाताओं को जिन्होंने उपज को उपलब्ध कराने का वचन दिया था, अधिकाधिक

➲ चित्र 10.17 के तीन भाग हैं जिनमें कपास ढोने के भिन्न-भिन्न साधन दर्शाए गए हैं। चित्र में कपास के बोझ से दबे जा रहे बैलों, सड़क पर पड़े शिलाखंडों और नौका पर लदी गाँठों के विशाल ढेर को देखिए। कलाकार इन तसवीरों के जरिए क्या दर्शाना चाहता है?

चित्र 10.17

रेलों का युग शुरू होने से पहले कपास का परिवहन, इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 20 अप्रैल 1861। जब अमेरिकी गृहयुद्ध के दौरान अमेरिका से कपास की आपूर्ति बहुत कम हो गई तब ब्रिटेन को यह आशा हुई कि भारत ब्रिटिश उद्योगों की कपास संबंधी सारी ज़रूरतों को पूरा कर देगा। इसके लिए आपूर्ति का आकलन किया जाने लगा, कपास की गुणवत्ता की जाँच होने लगी और उत्पादन तथा विपणन के तरीकों का अध्ययन किया जाने लगा। उनकी यह दिलचस्पी 'इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़' के पृष्ठों में परिलक्षित होती है।

मात्रा में राशि उधार दे सकें। जब बाज़ार में तेज़ी आती है तो ऋण आसानी से दिया जाता है क्योंकि ऋणदाता अपनी उधार दी गई राशियों की वसूली के बारे में अधिक आश्वस्त महसूस करते हैं।

इन बातों का दक्कन के देहाती इलाक़ों में काफ़ी असर हुआ। दक्कन के गाँवों के रैयतों को अचानक असीमित ऋण उपलब्ध होने लगा। उन्हें कपास उगाई जाने वाले प्रत्येक एकड़ के लिए 100 रु. अग्रिम राशि दी जाने लगी। साहूकार भी दीर्घावधिक ऋण देने के लिए एकदम तैयार थे।

जब अमेरिका में संकट की स्थिति बनी रही तो बम्बई दक्कन में कपास का उत्पादन बढ़ता गया। 1860 से 1864 के दौरान कपास उगाने वाले एकड़ों की संख्या दोगुनी हो गई। 1862 तक स्थिति यह आई कि ब्रिटेन में जितना भी कपास का आयात होता था उसका 90 प्रतिशत भाग अकेले भारत से जाता था।

लेकिन इन तेज़ी के वर्षों में सभी कपास उत्पादकों को समृद्धि प्राप्त नहीं हो सकी। कुछ धनी किसानों को तो लाभ अवश्य हुआ। लेकिन अधिकांश किसान कर्ज़ के बोझ से और अधिक दब गए।

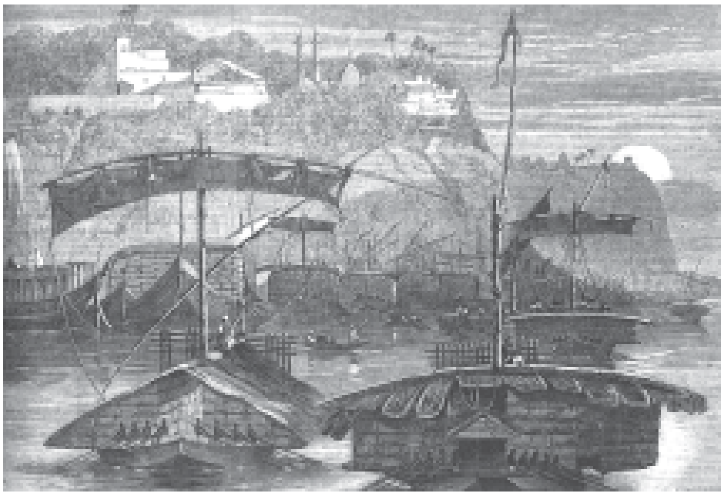

चित्र 10.18
नौकाओं का एक बेड़ा मिर्ज़ापुर से गंगानदी के रास्ते कपास की गांठें ले जा रहा है। इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 13 दिसंबर 1862
रेलों का युग प्रारंभ होने से पहले, मिर्ज़ापुर का कस्बा दक्कन से आने वाली कपास के लिए संग्रह केंद्र था।

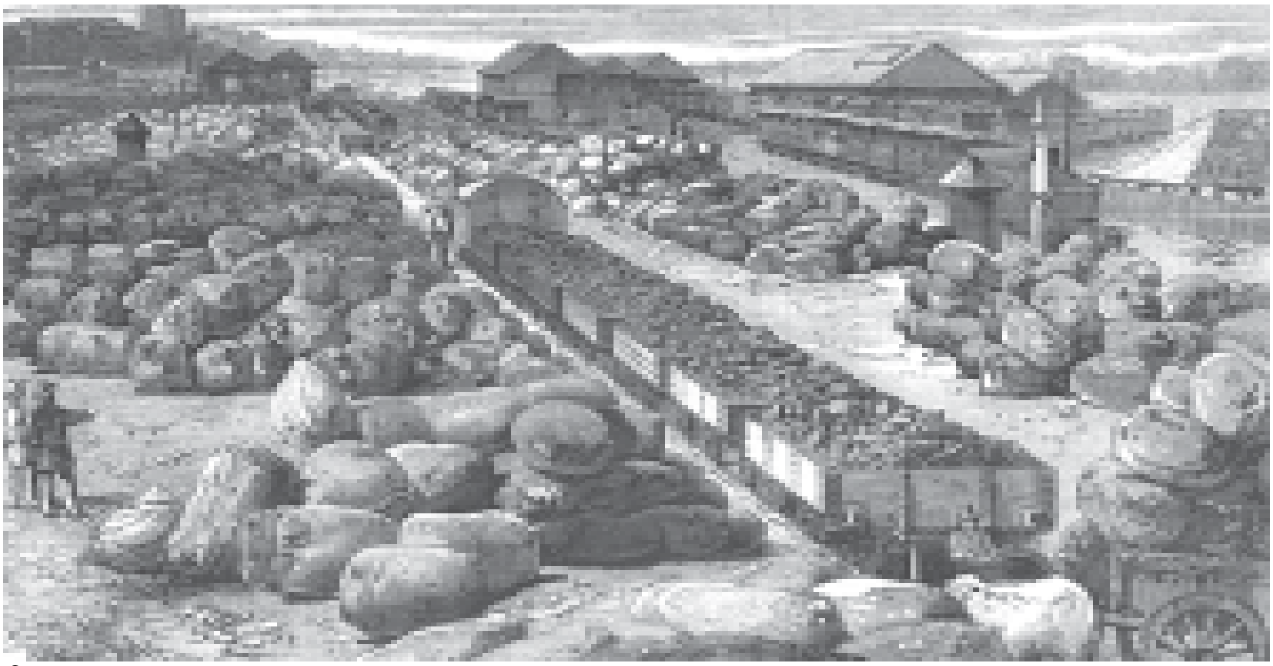

चित्र 10.19
ग्रेट इंडियन पेनिन्सुलर रेलवे के बम्बई टर्मिनस पर कपास की गांठें पड़ी हुई हैं; इन्हें आगे समुद्री जहाज़ से इंग्लैंड भेजा जाएगा।
इलस्ट्रेटेड लंडन न्यूज़, 23 अगस्त 1862। जब रेलें चलने लगीं तो कपास की गांठें गाड़ियों और नौकाओं द्वारा ही नहीं, रेलों से भी भेजी जाने लगीं। नदी मार्ग से यातायात धीरे-धीरे कम होता गया परंतु परिवहन के पुराने साधनों का प्रयोग पूरी तरह बंद नहीं हुआ। चित्र में पीछे दाहिनी ओर लदी हुई बैलगाड़ियाँ रेलवे स्टेशन से पत्तन तक कपास की गांठें ले जाने के लिए तैयार खड़ी हैं।

3.5 ऋण का स्रोत सूख गया

जिन दिनों कपास के व्यापार में तेज़ी रही, भारत के कपास व्यापारी, अमेरिका को स्थायी रूप से विस्थापित करके, कच्ची कपास के विश्व बाज़ार को अपने क़ब्ज़े में करने के सपने देखने लगे। 1861 में बोंबे गजट के संपादक ने पूछा, "दास राज्यों (संयुक्त राज्य अमेरिका) को विस्थापित करके, लंकाशायर को कपास का एकमात्र आपूर्तिकर्ता बनने से भारत को कौन रोक सकता है?" लेकिन 1865 तक ऐसे सपने आने बंद हो गए। जब अमेरिका में गृहयुद्ध समाप्त हो गया तो वहाँ कपास का उत्पादन फिर से चालू हो गया और ब्रिटेन के भारतीय कपास के निर्यात में गिरावट आती चली गई।

महाराष्ट्र में निर्यात व्यापारी और साहूकार अब दीर्घावधिक ऋण देने के लिए उत्सुक नहीं रहे। उन्होंने यह देख लिया था कि भारतीय कपास की माँग घटती जा रही है और कपास की कीमतों में भी गिरावट आ रही है। इसलिए उन्होंने अपना कार्य-व्यवहार बंद करने, किसानों को अग्रिम राशियाँ प्रतिबंधित करने और बकाया ऋणों को वापिस माँगने का निर्णय लिया।

एक ओर तो ऋण का स्रोत सूख गया वहीं दूसरी ओर राजस्व की माँग बढ़ा दी गई। जैसा कि हमने ऊपर पढ़ा है, पहला राजस्व बंदोबस्त 1820 और 1830 के दशकों में किया गया था। अब अगला बंदोबस्त करने का समय आ गया था। और इस नए बंदोबस्त में माँग को, नाटकीय ढंग से, 50 से 100 प्रतिशत तक बढ़ा दिया गया। भला, बेचारे रैयत उस हालत में, जबकि कीमतें गिर रही थीं और कपास के खेत गायब हो रहे थे, इस प्रकार बढ़ी हुई माँग को कैसे पूरा कर सकते थे? इसलिए उन्हें एक बार फिर ऋणदाता की शरण में जाना पड़ा। लेकिन ऋणदाता ने अबकी बार ऋण देने से इनकार कर दिया। उसे अब रैयत द्वारा ऋण वापस अदा किए जाने की उसकी क्षमता में विश्वास नहीं रहा था।

3.6 अन्याय का अनुभव

ऋणदाता द्वारा ऋण देने से इनकार किए जाने पर, रैयत समुदाय को बहुत ग़ुस्सा आया। वे इस बात के लिए ही क्रुद्ध नहीं थे कि वे ऋण के गर्त में गहरे से गहरे डूबे जा रहे हैं अथवा कि वे अपने जीवन को बचाने के लिए ऋणदाता पर पूर्ण रूप से निर्भर हैं, बल्कि वे इस बात से ज़्यादा नाराज थे कि ऋणदाता वर्ग इतना संवेदनहीन हो गया है कि वह उनकी हालत पर कोई तरस नहीं खा रहा है। ऋणदाता लोग देहात के प्रथागत मानकों यानी रूढ़ि रिवाजों का भी उल्लंघन कर रहे थे।

स्रोत 8

रैयत अर्ज़ी

नीचे एक याचिका का उदाहरण दिया गया है जो करजत तालुको के मीरगाँव के एक रैयत द्वारा कलेक्टर अहमदनगर, दक्कन दंगा आयोग को दी गई थी :

> साहूकार लोग काफी दिनों से हम पर अत्याचार कर रहे हैं? चूँकि हम अपना घर खर्च चलाने के लिए काफी मात्रा में पैसा नहीं कमा सकते, इसलिए हम उनसे पैसा, कपड़ा और अनाज़ माँगने के लिए मजबूर हो गए हैं। उनसे हमें ये चीजें मिलती जाती हैं पर बड़ी कठिनाई से और उसके लिए हमें उनके साथ कड़ी शर्तों पर बंधपत्र लिखने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इसके अलावा कपड़ा और अनाज भी नकद दरों पर नहीं बेचा जाता। हमसे जो कीमतें माँगी जाती हैं वह नकदी कीमत चुकाने वाले ग्राहकों की अपेक्षा आमतौर पर 25 से 50 प्रतिशत होती हैं।... हमारे खेतों की उपज भी साहूकार ले जाते हैं; उपज ले जाते समय तो वे हमें यह आश्वासन देते हैं कि इसकी कीमत हमारे खाते में जमा कर दी जाएगी लेकिन वे हमारे खातों में ऐसा कोई उल्लेख नही करते। वे जब हमारी उपज ले जाते हैं तो बदले में कोई रसीद भी नहीं देते।

➲ रैयत अपनी अर्जी में क्या शिकायत कर रहा है। ऋणदाता द्वारा किसान से ले जाई जाने वाली फसल उसके खाते में क्यों नहीं चढ़ाई जाती? किसानों को कोई रसीद क्यों नहीं दी जाती? यदि आप ऋणदाता होते तो इन व्यवहारों के लिए आप क्या-क्या कारण देते?

पैसा उधार देने का कारोबार निश्चित रूप से औपनिवेशिक शासन से पहले भी काफ़ी फैला हुआ था और ऋणदाता अकसर ताकतवर हस्तियाँ होते थे। कई प्रकार के प्रथागत मानक ऋणदाता और रैयत के पारस्परिक संबधों पर लागू होते थे और उन्हें विनियमित करते थे। एक सामान्य मानक यह था कि ब्याज मूलधन से अधिक नहीं लिया जा सकता था। इसका प्रयोजन ऋणदाता द्वारा की जाने वाली जबरन वसूली को सीमित करना और यह पारिभाषित करना था कि 'उचित ब्याज' क्या होना चाहिए। औपनिवेशिक शासन में इस नियम की धज्जियाँ उड़ा दी गईं। दक्कन दंगा आयोग द्वारा छानबीन किए गए मामलों में से एक मामले में ऋणदाता ने 100 रु. के मूलधन पर 2,000 रु. से भी अधिक ब्याज लगा रखा था। अनेकानेक याचिकाओं में रैयत लोगों ने इस प्रकार की जबरन वसूलियों और प्रथाओं के उल्लंघन से संबंधित अन्याय के विरुद्ध शिकायत की थी।

स्रोत 8

भाड़ा-पत्र

जब किसान पर ऋण का भार बहुत बढ़ गया तो वह ऋणदाता का ऋण चुकाने में असमर्थ हो गया। अब ऋणदाता के पास अपना सर्वस्व-जमीन, गाड़ियाँ, पशुधन देने के अलावा कोई चारा नहीं था। लेकिन पशुओं के बिना वह आगे खेती कैसे कर सकता था। इसलिए उसने जमीन और पशु भाड़े पर ले लिए। अब उसे उन पशुओं के लिए, जो मूल रूप से उसके अपने ही थे, भाड़ा चुकाना पड़ता था। उसे एक भाड़ा-पत्र (किरायानामा) लिखना पड़ता था जिसमें यह साफतौर पर कहा जाता था कि ये पशु और गाड़ियाँ उसकी अपनी नहीं हैं। विवाद छिड़ने पर, ये दस्तावेज़ न्यायालयों में मान्य होते थे।

नीचे एक ऐसे ही दस्तावेज़ का नमूना दिया गया है जो नवंबर 1873 में एक किसान ने हस्ताक्षरित किया था (यह दक्कन दंगा आयोग के अभिलेखों से उद्धृत है।) :

> मैने आपको देय ऋण के खाते में, आपको अपनी लोहे के धुरों वाली दो गाड़ियाँ, साज-समान और चार बैलों के साथ बेची हैं... मैंने इस दस्तावेज़ के तहत उन्हीं दो गाड़ियों और चार बैलों को आपसे भाड़े पर लिया है। मैं हर माह आपको चार रुपए प्रतिमाह की दर से उनका किराया (भाड़ा) दूँगा और आपसे आपकी अपनी लिखावट में रसीद प्राप्त करुँगा। रसीद न मिलने पर मैं यह दलील नहीं दूँगा कि किराया नहीं चुकाया गया है।

➲ उन सभी वचनबद्धताओं की सूची बनाइए जो किसान इस दस्तावेज़ में दे रहा है। ऐसा कोई दस्तावेज़ हमें किसान और ऋणदाता के बीच के संबंधों के बारे में क्या बताता है। इससे किसान और बैलों (जो पहले उसी के थे) के बीच के संबंधों में क्या अंतर आएगा?

रैयत ऋणदाता को कुटिल और धोखेबाज समझने लगे थे। वे ऋणदाताओं के द्वारा खातों में धोखाधड़ी करने और कानून को धत्ता बताने की शिकायतें करते थे। 1859 में अंग्रेज़ों ने एक परिसीमन क़ानून

पारित किया जिसमें यह कहा गया कि ऋणदाता और रैयत के बीच हस्ताक्षरित ऋणपत्र केवल तीन वर्षों के लिए ही मान्य होंगे। इस कानून का उद्देश्य बहुत समय तक ब्याज को संचित होने से रोकना था। किंतु ऋणदाता ने इस कानून को घुमाकर अपने पक्ष में कर लिया और रैयत से हर तीसरे साल एक नया बंधपत्र भरवाने लगा। जब कोई नया बांड हस्ताक्षरित होता तो न चुकाई गई शेष राशि– अर्थात् मूलधन और उस पर उत्पन्न तथा इकट्ठा हुए संपूर्ण ब्याज को मूलधन के रूप में दर्ज किया जाता और उस पर नए सिरे से ब्याज लगने लगता। दक्कन दंगा आयोग को प्राप्त हुई याचिकाओं में रैयत लोगों ने यह बतलाया कि यह प्रक्रिया कैसे काम कर रही थी (स्रोत 10 देखिए) और किस प्रकार ऋणदता लोग रैयत को ठगने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाते थे : जब ऋण चुकाए जाते तो वे रैयत को उसकी रसीद देने से इनकार कर देते थे, बंधपत्रों में जाली आंकड़े भर लेते थे, किसानों की फसल नीची कीमतों पर ले लेते थे और आखिरकार किसानों की धन-संपति पर ही कब्ज़ा कर लेते थे।

तरह-तरह के दस्तावेज़ और बंधपत्र इस नयी अत्याचारपूर्ण प्रणाली के प्रतीक बन गए। पहले ऐसे दस्तावेज़ बहुत ही कम हुआ करते थे। किंतु ब्रिटिश अधिकारी अनौपचारिक समझौते के आधार पर पुराने ढंग से किए गए लेन-देन को संदेह की दृष्टि से देखते थे। उनके विचार से लेन-देन की शर्तें, संविदाओं, दस्तावेज़ों और बंधपत्रों में साफ़-साफ़, सुस्पष्ट और सुनिश्चित शब्दों में कही जानी चाहिए और वे विधिसम्मत होनी चाहिए। जब तक कि कोई दस्तावेज़ या संविदा कानून की दृष्टि से प्रवर्तनीय नहीं होगा तब तक उसका कोई मूल्य नहीं होगा।

समय के साथ, किसान यह समझने लगे कि उनके जीवन में जो भी दुःख तकलीफ है वह सब बंधपत्रों और दस्तावेज़ों की इस नयी

स्रोत 10

कर्ज़ कैसे बढ़ते गए

दक्कन दंगा आयोग को दी गई अपनी याचिका में एक रैयत ने यह स्पष्ट किया कि ऋणों की प्रणाली कैसे काम करती थी :

एक साहूकार अपने कर्ज़दार को एक बंधपत्र के आधार पर 100 रु. की रकम 3-2 आने प्रतिशत की मासिक दर पर उधार देता है। कर्ज़ लेने वाला इस रकम को बांड पास होने की तारीख से आठ दिन के भीतर वापस अदा करने का करार करता है। रकम वापस अदा करने के लिए निर्धारित समय के तीन साल बाद साहूकार अपने कर्ज़दार से मूलधन तथा ब्याज दोनों को मिला कर बनी राशि (मिश्रधन) के लिए एक अन्य बांड उसी ब्याज दर से लिखवा लेता है और उसे संपूर्ण कर्ज़ा चुकाने के लिए 125 दिन की मोहलत दे देता है। तीन साल ओर 15 दिन बीत जाने पर कर्ज़दार द्वारा एक तीसरा बांड पास किया जाता... (यह प्रक्रिया बार-बार दोहराई जाती है)... 12 वर्ष के अंत में... 1000 रु. की राशि पर उसका कुल ब्याज 2,028 रु. 10 आना 3 पैसे हो जाता है।

➲ ब्याज की उस मद का हिसाब लगाइए जो रैयत इन वर्षों में दे रहा था।

व्यवस्था के कारण ही है। उनसे दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर करवा लिए जाते और अँगूठे के निशान लगवा लिए जाते थे पर उन्हें यह पता नहीं चलता कि वास्तव में वे किस पर हस्ताक्षर कर रहे हैं या अँगूठे के निशान लगा रहे हैं। उन्हें उन खंडों के बारे में कुछ भी पता नहीं होता जो ऋणदाता बंधपत्रों में लिख देते थे। वे तो हर लिखे हुए शब्द से डरने लगे थे। मगर वे लाचार थे क्योंकि जीवित रहने के लिए उन्हें ऋण चाहिए थे और ऋणदाता कानूनी दस्तावेज़ों के बिना ऋण देने को तैयार नहीं थे।

4. दक्कन दंगा आयोग

जब विद्रोह दक्कन में फैला तो प्रारंभ में बम्बई की सरकार उसे गंभीरतापूर्वक लेने को तैयार नहीं थी। लेकिन भारत सरकार ने, जो कि 1857 की याद से चिंतित थी बम्बई की सरकार पर दबाव डाला कि वह दंगों के कारणों की छानबीन करने के लिए एक जाँच आयोग बैठाए। आयोग ने एक रिपोर्ट तैयार की जो 1878 में ब्रिटिश पार्लियामेंट में पेश की गई।

यह रिपोर्ट जिसे दक्कन दंगा रिपोर्ट कहा जाता है, इतिहासकारों को उन दंगों का अध्ययन करने के लिए आधार सामग्री उपलब्ध कराती है। आयोग ने दंगा पीड़ित जिलों में जाँच पड़ताल कराई, रैयत वर्गों, साहूकारों और चश्मदीद गवाहों के बयान लिए, भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में राजस्व की दरों, कीमतों और ब्याज के बारे में आंकडे इकट्ठे किए और जिला कलेक्टरों द्वारा भेजी गई रिपोर्टों का संकलन किया।

ऐसे स्रोतों पर दृष्टिपात करते समय, हमें यह फिर याद रखना होगा कि वे सरकारी स्रोत हैं और वे घटनाओं के बारे में सरकारी सरोकार और अर्थ प्रतिबिंबित करते हैं। उदाहरण के लिए, दक्कन दंगा आयोग से विशिष्ट रूप से यह जाँच करने के लिए कहा गया था कि क्या सरकारी राजस्व की माँग का स्तर विद्रोह का कारण था। और संपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करने के बाद आयोग ने यह सूचित किया था कि सरकारी माँग किसानों के गुस्से की वजह नहीं थी। इसमें सारा दोष ऋणदाताओं या साहूकारों का ही था। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि औपनिवेशिक सरकार यह मानने को कदापि तैयार नहीं थी कि जनता में असंतोष या रोष कभी सरकारी कार्रवाही के कारण उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार, सरकारी रिपोर्टें इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए बहुमूल्य स्रोत सिद्ध होती हैं। लेकिन उन्हें हमेशा सावधानीपूर्वक पढ़ा जाना चाहिए और समाचारपत्रों, गैर-सरकारी वृतांतों, वैधिक अभिलेखों और यथासंभव मौखिक स्रोतों से संकलित साक्ष्य के साथ उनका मिलान करके उनकी विश्वसनीयता की जाँच की जानी चाहिए।

➲ चर्चा कीजिए...

आजकल आप जिस क्षेत्र में रहते हैं वहाँ पर ली जाने वाली ब्याज दरों का पता लगाइए। यह भी पता लगाइए कि क्या ये दरें पिछले 50 वर्षों में बदली हैं। क्या भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों द्वारा अदा की जाने वाली दरों में कोई अंतर है? यदि है तो इन अंतरों के क्या कारण हैं?

काल-रेखा

1765	इंग्लिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त की
1773	ईस्ट इंडिया कंपनी के क्रियाकलापों को विनियमित करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया गया
1793	बंगाल में इस्तमरारी बंदोबस्त
1800 का दशक	संथाल लोग राजमहल की पहाड़ियों में आने लगे और वहाँ बसने लगे
1818	बम्बई दक्कन में पहला राजस्व बंदोबस्त
1820 का दशक	कृषि कीमतें गिरने लगीं
1840 व 1850 का दशक	बम्बई दक्कन में कृषि विस्तार की धीमी प्रक्रिया
1855-56	संथालों की बगावत
1861	कपास में तेज़ी का समारंभ
1875	दक्कन के गाँवों में रैयतों ने बग़ावत की

चित्र 10.20
एक ग्रामीण दृश्य, विलियम प्रिंसेप द्वारा चित्रित, 1820

उत्तर दीजिए (लगभग 100 से 150 शब्दों में)

1. ग्रामीण बंगाल के बहुत से इलाकों में जोतदार एक ताकतवर हस्ती क्यों था?
2. ज़मींदार लोग अपनी ज़मींदारियों पर किस प्रकार नियंत्रण बनाए रखते थे?
3. पहाड़िया लोगों ने बाहरी लोगों के आगमन पर कैसी प्रतिक्रिया दर्शाई?
4. संथालों ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह क्यों किया?
5. दक्कन के रैयत ऋणदाताओं के प्रति क्रुद्ध क्यों थे?

निम्नलिखित पर एक लघु निबंध लिखिए (लगभग 250 से 300 शब्दों में)

6. इस्तमरारी बंदोबस्त के बाद बहुत-सी ज़मींदारियाँ क्यों नीलाम कर दी गईं?
7. पहाड़िया लोगों की आजीविका संथालों की आजीविका से किस रूप में भिन्न थी?
8. अमेरिकी गृहयुद्ध ने भारत में रैयत समुदाय के जीवन को कैसे प्रभावित किया?
9. किसानों का इतिहास लिखने में सरकारी स्रोतों के उपयोग के बारे में क्या समस्याएँ आती हैं?

मानचित्र कार्य

10. उपमहाद्वीप के बाह्यरेखा मानचित्र (खाके) में इस अध्याय में वर्णित क्षेत्रों को अंकित कीजिए। यह भी पता लगाइए कि क्या ऐसे भी कोई इलाके थे जहाँ इस्तमरारी बंदोबस्त और रैयतवाड़ी व्यवस्था लागू थी। ऐसे इलाकों को मानचित्र में भी अंकित कीजिए।

परियोजना कार्य (कोई एक)

11. फ्रांसिस बुकानन ने पूर्वी भारत के अनेक जिलों के बारे मे रिपोर्ट प्रकाशित की थीं। उनमें से एक रिपोर्ट पढ़िए और इस अध्याय में चर्चित विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए उस रिपोर्ट में ग्रामीण समाज के बारे में उपलब्ध जानकारी को संकलित कीजिए। यह भी बताइए कि इतिहासकार लोग ऐसी रिपोर्टों का किस प्रकार उपयोग कर सकते हैं।
12. आप जिस क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ के ग्रामीण समुदाय के वृद्धजनों से चर्चा कीजिए और उन खेतों में जाइए जिन्हें वे अब जोतते हैं। यह पता लगाइए कि वे क्या पैदा करते हैं, वे अपनी रोजी-रोटी कैसे कमाते हैं, उनके माता-पिता क्या करते थे, उनके बेटे-बेटियाँ अब क्या करती हैं और पिछले 75 सालों में उनके जीवन में क्या क्या परिवर्तन आए हैं। अपने निष्कर्षों के आधार पर एक रिपोर्ट तैयार कीजिए।

यदि आप और जानकारी चाहते हैं तो इन्हें पढ़िए :

सुगाता बोस, 1986
अग्रेरियन बंगाल, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली

फ्रांसिस बुकानन, 1930
जरनल ऑफ फ्रांसिस बुकानन केप्ट ड्यूरिंग दि सर्वे ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर, सुपरिटेंडेंट, गवर्नमेंट प्रिंटिंग, बिहार और उड़ीसा, पटना

रामचन्द्र गुहा, 1989
दि अनक्वाइट वुड्स : इकोलॉजिकल चेंज एंड पीज़ेंट रेज़ीस्टेंट इन दि हिमालयाज़, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

सुमित गुहा, 1985
दि अग्रेरियन इकोनॉमी ऑफ दि बॉम्बे डेक्कन, 1818-1941, पेंग्विन, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली

रविन्द्र कुमार, 1968
वेस्ट्रन इंडिया इन दि नाइनटिंथ सेंचुरी : ए स्टडी इन दि सोशल हिस्ट्री ऑफ महाराष्ट्रा, लंदन : रूटलेज और केगन पॉल

रत्नलेखा राय, 1979
चेंज इन बेंगाल अग्रेरियन सोसाइटी, ई. 1760-1850, मनोहर, नयी दिल्ली

कुमार सुरेश सिंह, 1966
डस्ट-स्ट्रॉम एंड दि हेंगिंग मिस्ट : ए स्टडी ऑफ बिरसा मुंडा एंड हिज़ मूवमेंट इन छोटानागपुर (1874-1901), फर्मा के. एल. मुखोपाध्याय, कलकत्ता